खंड 2
एमिल दखाईम

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 एमिल दर्खाइम की कृतियों के दार्शनिक आधार*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 एमिल दर्खाइम का जीवन–परिचय

4.3 सामाजिक–ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

4.4 अन्य विचारकों के प्रभाव

4.4.1 सामाजिक यथार्थवाद

4.4.2 विज्ञानवाद एवं प्रत्यक्षवाद का प्रभाव

4.4.3 प्रकार्यवाद

4.5 मुख्य विचार

4.5.1 समाज में श्रम–विभाजन

4.5.2 सामाजिक तथ्य

4.5.3 आत्महत्या

4.5.4 धर्म और समाज की अभिव्यक्ति

4.5.5 सामूहिक चेतन

4.6 सारांश

4.7 संदर्भ

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- एमिल दर्खाइम का जीवन–परिचय देने के योग्य बन सकेंगे;
- उनके लेखन को प्रभावित करने वाले मुख्य विचार, एवं परिप्रेक्ष्यों की रूपरेखा प्रस्तुत करने के योग्य बन सकेंगे, और
- उनके लेखों में समाहित मुख्य संकल्पनाओं को स्पष्ट करने के योग्य बन सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

एमिल दर्खाइम एक फ़्रांसीसी समाजशास्त्री थे। उनके अनुसार, समाज का कोई भी वैज्ञानिक अध्ययन विकसित करना असंभव होता है। वस्तुतः, ऑगस्ट कॉम्त और ऐमिल दर्खाइम दोनों ही समाजशास्त्र को विश्वसनीयता प्रदान करने और एक स्वतंत्र शैक्षिक विषय–क्षेत्र के रूप में स्थापित करने में अपने योगदान के लिए जाने जाते हैं। इनमें से परवर्ती अर्थात् एमिल दर्खाइम समाज में श्रम–विभाजन, धर्म, आत्महत्या, एवं शिक्षा व नैतिकता विषयक अपने लेखों के लिए जाने जाते हैं। इस इकाई में, हम दर्खाइम के

*चारु साहनी, स्वतंत्र विदुषी, द्वारा रचित

जीवन–परिचय से आरंभ करेंगे ताकि आप उस सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक परिवेश से अवगत हो सकें जिसमें उनके विचार विकसित हुए। तदोपरांत, हम उन विशिष्ट बौद्धिक संकल्पनाओं पर विचार करेंगे जिन्होंने उन्हें प्रभावित किया। अंततः, हम उनके लेखों में समाहित कुछ महत्वपूर्ण विचारों को समझेंगे।

4.2 एमिल दर्खाइम का जीवन–परिचय

एमिल दर्खाइम का जन्म 15 अप्रैल, 1858 को पूर्वी फ़्रांस स्थित एपिनल नामक एक छोटे–से कस्बे में हुआ था। इनका पालन–पोषण एक यहूदी परिवार में हुआ, और इनके पिता एक रब्बी (अर्थात् यहूदी समुदाय के एक आध्यात्मिक नेता व धार्मिक गुरु) थे। बचपन में उन्होंने हिब्रू भाषा और टैल्मुड अर्थात् यहूदी विधि–संग्रह का अध्ययन किया। उनकी प्रारंभिक शिक्षा एक राबिनी स्कूल में हुई और वे एक रब्बी ही बनना चाहते थे। फिर धार्मिक शिक्षा में उनकी रुचि न रही और उन्होंने एक स्थानीय विद्यालय में प्रवेश ले लिया। दरअसल, उनका पालन–पोषण एक ऐसे परिवार में हुआ जो नैतिकता और अनुशासन के प्रति बेहद सजग था।

बड़े होने पर एमिल ने यहूदी धर्म और ईसाई धर्म से नाता तोड़ लिया। उनका मत था कि ये धर्म आधुनिक विश्व की समस्याओं का समाधान नहीं सुझा सकते। तथापि, अपनी समस्त शैक्षिक जीविका–वृत्ति के दौरान धर्म एवं नैतिकता के बौद्धिक अन्वेषण में उनकी रुचि बनी रही। वर्ष 1879 में उच्चतर शिक्षा के लिए दर्खाइम ने फ़्रांस स्थित सर्वाधिक जाने–माने महाविद्यालय *इकोल नॉर्मेल सुपेरियर* में प्रवेश ले लिया। आरंभ में उनकी रुचि मनोविज्ञान और दर्शन–शास्त्र में थी। उन्हें उक्त महाविद्यालय में होने वाली बौद्धिक चर्चाओं में बड़ा आनन्द आता था, परंतु वहाँ की शिक्षण–शैली के वे आलोचक ही रहे। उनका कहना था कि यह शैली बेहद साहित्यिक एवं आलंकारिक थी और इसमें वैज्ञानिक परिशुद्धता का अभाव था। अपने अध्ययन–काल के तीसरे वर्ष में उन्होंने समाजशास्त्र के अध्ययन का फ़ैसला कर लिया, जो कि उनके अनुसार, तात्विक प्रश्नों को समझने में कहीं अधिक 'तर्कसंगत', 'वैज्ञानिक' एवं 'व्यवहारपरक' था। उक्त महाविद्यालय में दर्खाइम पर रिनूविये एवं बूतरू जैसे नव–कैन्टियन विचारकों का प्रभाव पड़ा। बूतरू के चिन्तन ने दर्खाइम को प्रभावित किया। उनका कहना था कि हर शास्त्र–विद्या की विषय–वस्तु सुस्पष्ट होनी चाहिए। दर्खाइम तर्कसंगतवाद, नैतिकता के वैज्ञानिक अध्ययन एवं लौकिक शिक्षा के प्रति रिनूविये की वचनबद्धता से काफ़ी प्रभावित थे। साथ ही, वे इतिहासकार फ़ूस्ते द कुलांज से भी प्रभावित थे, जो वैज्ञानिक विधि के पक्षधर थे और सामाजिक जीवन में धर्म के महत्व पर ज़ोर देते थे।

वर्ष 1882 से लेकर 1887 तक दर्खाइम ने पेरिस के निकट राज्य–नियंत्रित माध्यमिक विद्यालयों में दर्शनशास्त्र पढ़ाया। उस समय तक, वे अपनी डॉक्टर की उपाधि के लिए शोध–प्रबंध (थीसिस) का विषय तय कर चुके थे और जो था– व्यक्तिवाद और समाजवाद के बीच का संबंध। तदंतर, उन्होंने 'व्यक्ति और समाज के बीच संबंध' पर ध्यान केन्द्रित किया। अंततः उन्होंने अपना शीर्षक 'व्यैक्तिक व्यक्तित्व और सामाजिक एकजुटता के बीच संबंध' तय किया। वर्ष 1886 तक वे अपने शोध–निबंध का प्रथम प्रारूप पूरा कर चुके थे और इसमें सम्मिलित विचारों को उन्होंने अपनी प्रथम पुस्तक 'द डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसाइटी' में समाहित कर लिया। आइए, दर्खाइम के शोध कार्य के विषय में कुछ और जानने के लिए बॉक्स 4.1 देखें।

बॉक्स 4.1 दर्खाइम का डॉक्टरेट स्तरीय शोध कार्य

उस समय फ़्रांस में डॉक्टरेट करने वाले शोधार्थियों को दो थीसिस– एक लघु तथा एक दीर्घ लिखने का प्रावधान था। दर्खाइम ने फ़्रांस के राजनीतिक वैज्ञानिक मांटेस्क्यू पर छोटी थीसिस लातिनी भाषा में लिखी। मांटेस्क्यू पहले ही राज्यों के विभिन्न प्रकारों की अन्य तथ्यों से व्याख्या करने की कोशिश कर चुके थे। वे प्रथम राजनीतिक चिन्तक थे जिन्होंने तुलनात्मक विधि द्वारा वैज्ञानिक रूप से राजनीतिक संस्थाओं को समझने का सूत्रपात किया था। दर्खाइम पर इस विधि ने प्रभाव डाला तथा इसका प्रयोग उन्होंने मुख्य रूप से समाजशास्त्र में किया। दर्खाइम की दूसरी थीसिस 'द डिवीज़न ऑफ़ लेबर इन सोसाइटी' से संबंधित है। यह थीसिस जब लिखी जा रही थी, उस समय तक इंग्लैण्ड एवं जर्मनी में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी तथा फ़्रांस पड़ोसी देशों के उक्त परिवर्तनों को महसूस करने लगा था। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड में एडम स्मिथ, एक अर्थशास्त्री द्वारा द *वैल्थ ऑफ़ नेशन्स* (1776) नामक पुस्तक की रचना एक शताब्दी पूर्व ही हो चुकी थी जिसमें उन्होंने श्रम–विभाजन के सिद्धांत को प्रतिपादित किया था। इस सिद्धांत द्वारा उत्पादन, कुशलता एवं धन बढ़ाने में योगदान की व्याख्या हुई थी। इस क्रांतिकारी विचार को दर्खाइम ने सामाजिक रूप दिया। फलस्वरूप, श्रम–विभाजन (डिवीज़न ऑफ़ लेबर) के प्रकार्यों, कारणों तथा व्याधिकीय रूपों (pathological forms) का आर्थिक ही नहीं बल्कि सामाजिक क्षेत्र, स्वयं समाज में भी उपयोग किया गया। [...]

दर्खाइम ने उक्त अध्ययन की पद्धतियों की व्याख्या एक अन्य रचना में की जो दो वर्ष पश्चात् अर्थात् 1895 में प्रकाशित हुई थी। इस कृति का अंग्रेज़ी नाम द *रूल्स ऑफ़ सोशियोलॉजिकल मैथड* (हिन्दी रूपान्तर, समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम) है। इस कृति में उन्होंने सामाजिक तथ्यों की परिभाषा, सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों, सामान्य एवं व्याधिकीय तथ्यों में विभेद करके सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियमों को प्रतिपादित किया है।

''दर्खाइम ने 1897 में एक अन्य कृति, सूइसाइड (*Suicide*) प्रकाशित की। इसमें आत्महत्या के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को दर्शाया तथा इसमें उन सामाजिक परिस्थितियों की व्याख्या की जिनमें आत्महत्या की दर बढ़ती है। उन्होंने आत्महत्या के तीन प्रकारों को बताया है तथा कहा है कि प्रत्येक प्रकार की आत्महत्या का अलग–अलग कारण होता है।''{(जीवन–परिचय– एमिल दर्खाइम (1858–1917), खण्ड 3, ईएसओ 13:5–6 से अनुकूलित}

यद्यपि कॉम्त वर्ष 1822 में ही 'समाजशास्त्र' के लिए सोशियॉलोजी (Sociology) शब्द गढ़ चुके थे, समाजशास्त्र की यह शास्त्र–विद्या अब भी शैक्षिक मान्यता के लिए संघर्षरत थी। समाजशास्त्र के प्रभाव को मन में स्पष्ट रूप से देखने के लिए दर्खाइम ने जर्मन में विश्वविद्यालयों पर ध्यान केंद्रित किया। वर्ष 1885–86 के बीच उन्होंने अनेक जर्मन विश्वविद्यालयों का दौरा किया। वे समाजों के अध्ययन में अनेक जर्मन सामाजिक चिंतक हर्बर्ट स्पेंसर की कायिक अनुरूपता से प्रभावित थे। जर्मनी में, उन पर वैगनर एवं श्मॉलर के नैतिकता संबंधी वैज्ञानिक अध्ययन ने भी छाप छोड़ी। उन्होंने नैतिकता संबंधी समाजशास्त्रीय व्याख्या में विल्हम वुद के योगदान की बेहद सराहना की। जर्मन सामाजिक विज्ञान एवं नैतिकता विषयक दर्खाइम के लेख बहुत मशहूर हुए।

वर्ष 1887 में दर्खाइम ने अपनी जीविका–वृत्ति बोर्दियू विश्वविद्यालय में एक प्रोफ़ेसर के रूप में आरंभ कर दी। यहाँ उन्होंने बड़े ही लाभकारी पंद्रह वर्ष बिताए। यहीं रहते वर्ष 1893 में उनकी प्रथम पुस्तक 'द डिवीज़न ऑफ लेबर इन सोसाइटी' प्रकाशित हुई। यह उनके डॉक्टर की उपाधि संबंधी शोध–निबंध पर आधारित थी। बोर्दियू में प्रकाशित उनकी अन्य पुस्तकें रहीं– वर्ष 1895 में *'द रूल्स ऑफ़ सोशियॉलोजिकल मैथड'* तथा वर्ष 1897 में *'सूइसाइड'*। वर्ष 1898 में एमिल दर्खाइम ने *'ल'एनी सोशियॉलोजिके'* नामक एक पत्रिका शुरू की, जिसकी गिनती विश्व के सर्वप्रथम समाजशास्त्र संबंधी पत्र–पत्रिकाओं में होती है। अपने जीवनकाल में दर्खाइम को समाजशास्त्र के सिद्धांत का समर्थन करने के लिए आलोचना का सामना करना पड़ा।

दर्खाइम राजनीति को नापसंद करते थे परंतु 'नैतिक व्यष्टिवाद' विषयक उनके एक लेख ने ड्रायफुस मामले का समर्थन करते हुए बुद्धिजीवियों के खिलाफ़ अभियोगों का करारा जवाब दिया। उनके लेख का शीर्षक था– 'इन्डिविजुअल्स एंड इंटलैक्चुअल्स'। एलफ्रेड ड्रायफुस पर प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान इस बात को लेकर फौज़ी न्यायालय में झूठा मुकदमा चलाया गया कि उन्होंने पेरिस में जर्मन दूतावास को गोपनीय दस्तावेज़ बेचे। ड्रायफुस प्रकरण के पश्चात् दर्खाइम ने विभिन्न सार्वजनिक वाद–विवादों में हिस्सा लिया और इससे वर्ष 1902 में उनकी नियुक्ति पेरिस स्थित सोर्बोन यूनिवर्सिटी में हो गई। यहाँ उन्होंने 'शिक्षा एवं समाजशास्त्र' पढ़ाया। वर्ष 1906 में वे प्रोफ़ेसर हो गए और 1913 में दर्खाइम को 'शिक्षा विज्ञान एवं समाजशास्त्र' का प्रभार सौंपा गया। प्रथम विश्वयुद्ध में अपने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् वर्ष 1917 में दिल का दौरा पड़ने से दर्खाइम का देहांत हो गया।

4.3 सामाजिक–ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

फ़्रांसीसी क्रांति (1789–1799) एवं प्रबोधन युग शुरू होने के बाद समाज में व्यष्टिवाद की वृद्धि विषयक एक बौद्धिक चिंता व्याप्त हो गई थी। वैयक्तिक राजनीतिक अधिकारों के अभिकथन में वृद्धि और राज्य के सामूहिक प्राधिकार में गिरावट देखी जा रही थी। वर्ष 1871 में, फ़्रांस के समक्ष राजनीतिक संकट था और राष्ट्रीय एकता का पतन होता जा रहा था। फ़्रांस ने इसी कारण सामाजिक प्रगति पर ध्यान केंद्रित करते हुए राजनीतिक समेकन की दिशा में कार्य किया। साथ ही, यह मानकर चला गया कि वैज्ञानिक पद्धति का विकास ही सामाजिक प्रगति की ओर ले जाएगा। दर्खाइम का मानना था कि समाजशास्त्रीय पद्धति नैतिक व्यवस्था में अवनति के समाधान प्रदान कर सकती है। उनकी रुचि एक नैतिक नागरिक एवं चिरन्तन व्यवस्था लागू कर गणतंत्र को चंगा कर देने में थी। दर्खाइम का सरोकार इस प्रकार के विचारों से था कि लोग सामाजिक जीवन से किस प्रकार जुड़े हैं। अपनी सभी प्रमुख कृतियों में उनका सरोकार इस बात का विश्लेषण करने से रहा कि वर्धमान व्यक्तिवाद से अभिलक्षित आधुनिक औद्योगिक युग में लोग एक–दूसरे के साथ संबंध कैसे क़ायम रखते हैं। आइए, बॉक्स 4.2 के माध्यम से उस सामाजिक परिस्थिति को समझें जिसमें रहकर यूरोप में समाज–शास्त्र का उदय हुआ।

बॉक्स 4.2 यूरोप में समाजशास्त्र के उदय का सामाजिक संदर्भ

''प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों द्वारा विकसित विचारों की जड़ें उन सामाजिक परिस्थितियों में निहित हैं जो उस समय के यूरोप में मौजूद थीं। अतः एक वैज्ञानिक विषय के रूप में समाजशास्त्र के उदय के प्रारंभिक चिह्न हमें यूरोपीय

इतिहास के उस काल में तलाशने होंगे जिसमें फ्रांसीसी क्रांति तथा औद्योगिक क्रांति के रूप में व्यापक स्तर पर इतने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। यूरोपीय समाज में परिवर्तन का यह दौर प्रबोधन युग (Enlightenment Period) के नाम से जाना जाता है, क्योंकि इसमें अट्ठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसी दार्शनिकों की चेतना निश्चित रूप से व्यक्त हुई है। प्रबोधन युग में **सामंतवादी** यूरोप के परम्परागत चिन्तन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। इससे यथार्थ की नई दृष्टि और उसके चिंतन के नए तरीके ने जन्म लिया। लोग जीवन के हर पहलू पर तार्किक चिन्तन करने लगे तथा इस समय धर्म, सरकार या राजा की कही बात को अंतिम सत्य मानने की प्रवृत्ति समाप्त होने लगी।

यह विश्वास किया गया कि प्रकृति तथा समाज, दोनों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जा सकता है। मनुष्य अनिवार्यतः तार्किक प्राणी है। तर्कपूर्ण सिद्धांतों पर आधारित समाज मनुष्य को अपनी क्षमताओं को पहचानने में अधिक सहायक सिद्ध होता है। ऐसे विचारों की जड़ें यूरोप में विज्ञान तथा वाणिज्य के विकास में ही जमी हुई थीं। वाणिज्यिक क्रांति तथा वैज्ञानिक क्रांति के फलस्वरूप एक नया दृष्टिकोण पनपा तथा यह फ़्रांसीसी तथा औद्योगिक क्रांतियों के दौरान पुष्ट हुआ। इस नए दृष्टिकोण से समाजशास्त्र की नींव पड़ी।

यूरोपीय समाज में हो रहे सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए सबसे पहले हमें उस समाज का अध्ययन करना होगा, जो परम्परागत यूरोप में अर्थात् प्रबोधन युग से पूर्व वहाँ मौजूद था।

प्राचीन यूरोप का स्वरूप परम्परावादी था। उसकी आर्थिक व्यवस्था में भूमि को केन्द्रीय स्थान प्राप्त था। सामंत भूमि के मालिक थे तथा किसान भूमि पर काम करते थे। समाज दो वर्गों में बँटा था और उनका विभाजन एकदम शीशे की तरह साफ़ था। धर्म समाज का आधारभूत सिद्धांत था। धर्मगुरु, जैसे पादरी, ही यह तय करते थे कि क्या नैतिक है और क्या नहीं। परिवार तथा नातेदारी संबंधों का मानव–जीवन में अति महत्वपूर्ण स्थान था। राजतंत्र की जड़ें समाज में बहुत गहरी जमी हुई थीं। ऐसी मान्यता थी कि ईश्वर ने राजा को लोगों पर शासन करने के लिए भेजा है।

फ़्रांसीसी क्रांति तथा औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप जो नया यूरोप उभरकर सामने आया, उन्होंने प्राचीन यूरोप के हर मुख्य पहलू को चुनौती दी। फलस्वरूप वर्गों का पुनर्गठन हुआ। पुराने वर्ग ध्वस्त हो गए तथा नए वर्गों ने जन्म लिया। धर्म को चुनौती दी जाने लगी। धर्म का महत्व पहले से कम हो गया। पारिवारिक निष्ठाओं का स्थान वैचारिक आस्थाओं ने ले लिया। महिलाओं की स्थिति में बदलाव आया। अंततः राजतंत्र की समाप्ति हुई और **लोकतंत्र** का आगमन हुआ।

समाज की सभी मुख्य संकल्पनाओं – धर्म, समुदाय, सत्ता, समाज आदि की नई व्याख्याएँ होने लगीं और उन्हें नए संदर्भ मिलने लगे।''(ईएसओ 13, खण्ड 1:15–16 से अनुकूलित)

जैसा कि हमने भाग 4.2 में पढ़ा, दर्खाइम ने शिक्षा–विज्ञान एवं समाजशास्त्र के आचार्य (प्रोफ़ेसर) के रूप में कार्य किया। उन दिनों फ़्रांसीसी सरकार शिक्षा को धर्मनिरपेक्ष बनाने में लगी थी अर्थात् उन्होंने एक ऐसी शिक्षा–व्यवस्था लागू करने का प्रयास किया जिस पर किसी भी धार्मिक आस्था का पूर्णतः प्रभाव न हो। यहाँ दर्खाइम ने शिक्षा में

धर्मनिरपेक्ष विषयों को सम्मिलित किया। स्कूलों को प्रोत्साहित किया गया कि वे समाज के प्रति सम्मान की शिक्षा दें। वे चाहते थे कि छात्र समाज की संस्थाओं का आदर करें और साथ ही, वे सामाजिक परिवर्तन को एक धर्मनिरपेक्ष परिप्रेक्ष्य में समझने में सक्षम हों।

आप देखेंगे कि दर्खाइम के अधिकांश लेखों में किसी ने किसी रूप में कुछ विशिष्ट अवधारणाएँ एवं विचार दृष्टिगत होते हैं। इनमें से कुछ हैं– समाज में 'आदर्शों' एवं नैतिक एकता का महत्व, एक सक्रिय अभिकर्ता के साथ–साथ सामाजिक प्रभावों के एक निष्क्रिय प्राप्तकर्त्ता के रूप में व्यक्ति–विशेष का महत्व, तथा समाज के प्रति व्यक्ति–विशेष का लगाव।

4.4 दर्खाइम की कृतियों पर अन्य विचारकों के प्रभाव

दर्खाइम की कृतियों को उस बौद्धिक परिस्थिति के आलोक में समुचित रूप से समझा जा सकता है जिसके तहत उन्हें प्रसिद्धि मिली। आइए, दर्खाइम को प्रभावित करने वाले बौद्धिक विचारों पर एक नज़र डालें–

4.4.1 सामाजिक यथार्थवाद

दर्खाइम ने सभी परिघटनाओं के लिए सामाजिक व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। दर्खाइम एक सामाजिक यथार्थवादी थे क्योंकि उन्होंने समाज को एक *सूई जेनरिस* अर्थात् अद्वितीय तथा व्यक्ति से पूर्व एक अस्तित्व के रूप में परिकल्पित किया था। उनका मानना था कि आर्थिक एवं उपयोगितावादी व्याख्याएँ वैज्ञानिक परिघटनाओं को स्पष्ट नहीं कर सकतीं। उपयोगितावादी दार्शनिकों के अनुसार, लोग पैसों का लेन–देन करते हैं और उनके ये कार्य आत्महित से संचालित होते हैं। उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल एवं जरमी बैंथम द्वारा समर्थित उपयोगितावादी सामाजिक सिद्धांत का खंडन किया। इन विद्वानों का कहना था कि लोग स्वशासित होते हैं और वृहत्तर सामाजिक नियमों से नियंत्रित नहीं होते। इसके विपरीत दर्खाइम का मानना था कि समाज व्यक्ति से पहले है। समाज और व्यक्ति अपृथक्करणीय हैं। लोगों पर एक सामाजिक दबाव बना ही रहता है और उनके कार्य पूरी तरह उपयोगितावादी अथवा आर्थिक रूप से संचालित नहीं होते। दर्खाइम समाजशास्त्र की प्रस्थिति को एक स्वतंत्र विषय–क्षेत्र के रूप में स्थापित करने के प्रति दृढ़ संकल्प थे। उनके अनुसार, समाजशास्त्र में उन सामाजिक तथ्यों का अध्ययन किया जाता है जो दबावकारी और बाहरी होते हैं। उनका मानना था कि मानव–कृत्य सर्वमान्य प्रयोजनों पर आधारित अथवा आत्महित की ओर संचालित नहीं होता, वरन् एक बाहरी दबाव अस्तित्वपरक होता है जो हमें किन्हीं कार्यों विशेष में लगाए रखता है। इसने दर्खाइम को *'द रूल्स ऑफ़ सोशियॉलोजिकल मैथड'* लिखने के लिए प्रेरित किया।

दर्खाइम की कृतियों पर प्रभाव डालने वाले प्रारंभिक फ़्रांसीसी बुद्धिजीवी – जे.जे. रूसो और हॉब्स थे। इनमें से पूर्ववर्ती ने दर्खाइम के नैतिकता एवं समाज विषयक विचारों पर प्रभाव डाला था। दर्खाइम, रूसो की इस धारणा से प्रभावित थे कि ऐसे सर्वमान्य सामाजिक एवं नीतिसंगत नियमों की आवश्यकता है जो समाज को एकबद्ध करके रख सकें। तथापि, दर्खाइम रूसो के उन व्यक्तिवादी सिद्धांतों से सहमत नहीं थे जो लोगों के 'मूल मानव–स्वभाव' में नैतिकता की व्याख्या खोजते थे। रूसो का कहना था कि सामूहिक इच्छाशक्ति अनेक वैयक्तिक इच्छाओं से उत्पन्न होती है और इसी कारण समाज उस अर्थ में वैयक्तिक इच्छाशक्ति से ही प्रकट होता है। दूसरी ओर, दर्खाइम ने

नैतिकता का विश्लेषण समाज के संबंध में किया। वर्ष 1902–03 में, सॉर्बोन में नैतिक शिक्षा विषयक अपने व्याख्यानों में दर्खाइम का मानना था कि नैतिकता का सरोकार अनुशासन और किसी खास समूह से होता है।

दर्खाइम हॉब्स के इस विचार से असहमत थे। हॉब्स का दृढ़ मत था कि व्यक्ति का प्रकृति के साथ एक अनुबन्ध होता है और उनका आग्रह था कि व्यक्ति की इच्छा का स्थान सामाजिक बंधनों से पहले होता है। हॉब्स ने समाज की उत्पत्ति हेतु एक राजनीतिक एवं वैधानिक व्याख्या तैयार की। उनके अनुसार, समाज तब अस्तित्व में आता है जब लोग सर्वमान्य नियमों, किसी नायक के नियम के प्रति औपचारिक समझौता कर लेते हैं और शांतपूर्वक रहने पर अपनी सहमति व्यक्त करते हैं। दर्खाइम का मानना था कि दबाव समूहगत लोगों से निर्गत होता है, न कि व्यक्ति विशेष से। यह दबाव नजर आता है और इसका प्रकटीकरण किसी व्यक्ति विशेष के अंदर से प्रकट नहीं होता।

दर्खाइम का सामाजिक यथार्थवाद हर्बर्ट स्पेंसर के व्यक्तिवाद अथवा नामवाद के विरुद्ध है। स्पेंसर के अनुसार, आधुनिक समाज औपचारिक समझौतों एवं स्वार्थपरक वैयक्तिक कार्यों के विनिमय पर आधारित है। उनका कहना है कि सामाजिक व्यवस्था लागू होती है जब लोग अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हैं। दर्खाइम का मानना था कि कोई भी व्यक्तिपरक कार्रवाई से पहले समाज को ध्यान में रखना पड़ता है। वे, तदनुसार, स्पेंसर से असहमत थे जो मानते थे कि ये व्यक्ति ही हैं जो निजीहित के कार्यों में रत हैं और जो समग्र समाज को क़ायम रखने की दिशा में कार्यरत हैं। दर्खाइम का मानना था कि सामाजिक एकीकरण वैयक्तिक कार्यों का परिणाम नहीं होता बल्कि समाज को एकजुट रखने वाला एकात्मकता का एक साझा भाव होता है।

अपनी पुस्तक द *रूल्स ऑफ़ सोशियॉलोजिकल मैथेड* में समाज के अध्ययन के लिए एक प्रविधिगत ढाँचा विकसित किया। उनका दृढ़ मत था कि समाजशास्त्र आत्महत्या की दरों, धार्मिक संबंधों, नैतिक नियमों, आदि सामाजिक तथ्यों का अध्ययन है। ये सामाजिक तथ्य व्यक्ति पर एक दबाव बनाते हैं। उनके अनुसार, परम सामाजिक सत्ता समूह है, न कि व्यक्ति। ये सामाजिक तथ्य मनोवैज्ञानिक सत्ता अथवा दैहिक व्याख्याओं के दायरे तक सीमित भी नहीं किए जा सकते। भाग 4.5.2 में हम सामाजिक तथ्यों के विषय में कुछ और चर्चा करेंगे। दर्खाइम की रचनाओं में इस बौद्धिक प्रभाव ने उन्हें प्रेरित किया कि वे व्यक्ति–विशेष के मानसिक एवं नैतिक गुणों का विश्लेषण इन्हे सामाजिक मानकर करें। दर्खाइम की रचनाओं में अभिव्यक्त सामूहिक अंतः करण एवं सामाजिक एकात्मकता की संकल्पनाएँ इन अवधारणाओं पर टिकी है कि मानसिक एवं नैतिक गुण सामाजिक होते हैं, न कि वैयक्तिक।

4.4.2 विज्ञानवाद एवं प्रत्यक्षवाद का प्रभाव

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक फ्रांस के विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र का अध्ययन किसी विषय–क्षेत्र के रूप में नहीं किया जाता था। ऑगस्ट कॉम्त ने वर्ष 1882 में ही 'समाजशास्त्र' शब्द गढ़ दिया था परंतु उस समय तक समाजशास्त्र का अध्ययन विश्वविद्यालयों में शुरू नहीं किया गया था। दर्खाइम कॉम्त की प्रत्यक्षवाद संबंधी अवधारणा से प्रभावित थे। वर्ष 1887 में बोर्दयू में एक प्रोफ़ेसर के रूप में नियुक्त किए जाने के बाद दर्खाइम ने समाजशास्त्र के अध्ययन को एक शैक्षिक विषय–क्षेत्र के रूप में संस्थापित कर दिया। उनके अनुसार, समाजशास्त्र को एक वैज्ञानिक विषय–क्षेत्र के

रूप में तभी स्थापित किया जाना चाहिए जब सामाजिक क्रियाकलापों में अंतर्निहित कारणात्मक संबंधों का अध्ययन किया जा सकता हो। प्रत्यक्षवादी सिद्धांत ने यह प्रतिपादित किया कि दर्शनशास्त्र अथवा इतिहास जैसे मीमांसात्मक सिद्धान्तिक विज्ञान–शास्त्रों को प्रेक्षित तथ्यों के बीच के संबंध पर आधारित सामान्यताओं की खोज करनी चाहिये (मॉरिसन 1995: 123) । समाजशास्त्र जो उस समय एक विषय–क्षेत्र के रूप में उभर रहा था, मात्र निराधार कल्पनाओं की बजाए सामान्य निष्कर्ष स्थापित कर सकता था।

एक वैज्ञानिक विषय–क्षेत्र के रूप में समाजशास्त्र संबंधी अपनी समझ विकसित करने की प्रक्रिया में दर्खाइम पर विभिन्न बुद्धिजीवियों का प्रभाव पड़ा। जैसे– मांटेस्क्यू, सेंट सायमन एवं कॉम्त। दर्खाइम मांटेस्क्यू की इस धारणा से प्रभावित थे कि समाज संबंधी कोई भी अन्वेषण विज्ञान तथ्यों के अन्वेषण से संबद्ध होता है, न कि महज़ बेबुनियाद कल्पनाओं से। मांटेस्क्यू का मानना था कि किसी समाज के अभाव में मानव का आस्तित्व संभव हो ही नहीं सकता। सेंट सायमन ने सामाजिक विज्ञान संबंधी विचार को प्रस्तुत अवश्य किया लेकिन ये काम्त थे, जिन्होंने एक विधि विकसित कर, विविध विज्ञान षास्त्रों को प्रत्यक्षवादी ओर गैर–प्रत्यक्षवादी के रूप में श्रेणीबद्ध किया था। कॉम्त ने ही विभिन्न विषय–क्षेत्रों को एक सोपानक्रम में व्यवस्थित कर सामाजिक विज्ञान–शास्त्रों को एक निम्नतर पायदान पर ही रखा। गणित एवं जीव विज्ञान जैसे विज्ञान–शास्त्रों को अपेक्षाकृत अधिक विकसित एवं प्रत्यक्षवादी माना गया और दर्शनशास्त्र एवं इतिहास जैसे सामाजिक विज्ञान–शास्त्रों को ग़ैर–प्रत्यक्षवादी का दर्ज़ा मिला। कॉम्त का मानना था कि सभी समाज धर्म–विज्ञान, पराभौतिक एवं वैज्ञानिक जैसे क्रमविकास के एकसमान चरणों से गुज़रे हैं। कॉम्त के अनुसार, धर्म–विज्ञान के चरण में मनुष्य प्रकृति में क्यों और कैसे को ईष्वरी इच्छा के रूप में स्पष्ट करते हैं। पराभौतिक चरण में, प्राकृतिक निमित्तों की व्याख्या काल्पनिक सच्चाइयों के आधार पर की जाती है। वैज्ञानिक चरण में, समाजिक नियमों की व्याख्या प्रेक्षण, वर्गीकरण एवं प्रयोग के आधार पर की जाती है। बहरहाल, दर्खाइम का दृढ़ मत था कि सभी शैक्षिक विषय क्षेत्र एक साथ विकसित होंगे और एक वैज्ञानिक विषय क्षेत्र का दर्ज़ा पा लेंगे अर्थात् इस पर प्रश्न चिह्न लगा है।

दर्खाइम का मानना था कि समाज *सूई जेनरिस* अर्थात् अद्वितीय होता है और वैज्ञानिक अन्वेषण पर टिका हो सकता है; इसे संघटित करने वाले व्यक्ति–विशेष या वैयक्तिक कार्यों के दायरे तक सीमित नहीं किया जा सकता। उन्होंने समाज एवं उसमें भीतर होने वाले परिवर्तनों का आनुभाविक रूप से अध्ययन करने के बजाय गूढ़ सिद्धांत प्रस्तुत करने और अमूर्त सिद्धांत बनाने के लिए कॉम्त और स्पेंसर दोनों की आलोचना की। दर्खाइम समाजशास्त्र की स्थिति एक ऐसे वैज्ञानिक विषय क्षेत्र के रूप में स्थापित करने की दिशा में कार्यरत थे जो समाजशास्त्र को दर्शनशास्त्र से अलग देखती हो और जहाँ समाज दर्शनशास्त्र में सम्मिलित न हो।

अपने भतीजे मार्सल मौस के साथ मिलकर दर्खाइम ने समाजों का अध्ययन करने के लिए तुलनात्मक विधि अपनाई। समाजों के क्रमविकास को समझने के लिए, उन्होंने तुलनात्मक विधि का प्रयोग सरल एवं आधुनिक समाजों में कारणात्मक कानूनों को समझने में किया। दर्खाइम और मार्सल मौस का मानना था कि सभ्यता की कोई गूढ़ संकल्पना प्रस्तुत करने की बजाय नृजाति वर्णन संबंधी अध्ययन–कार्यों में लगना और विभिन्न राज्यों, राष्ट्रों एवं सभ्यताओं के बीच अंतर स्पष्ट करना आवश्यक है।

4.4.3 प्रकार्यवाद

दर्खाइम ने समाज के अध्ययन में कॉम्ते और स्पेंसर द्वारा प्रस्तावित कायिक अनुरूपता को शामिल किया। समाज के कायिक दृश्टिकोण से, समाज किसी जीव के सदृश होता है। समाज के विभिन्न भाग आपस में जुड़े होते हैं और पूरे समाज को स्थायी बनाए रखने के लिए मिलकर काम करते हैं। यह समग्र उसके भागों के कुलयोग से कहीं अधिक होता है और इसे उसके व्यष्टिक भागों तक सीमित नहीं किया जा सकता है। हमारा हृदय अथवा फेफड़े, उदाहरण के लिए, अपना कोई अलग जीवन नहीं रखते। ये अंग समस्त शरीर को कायम रखने के लिए मिलकर काम करते हैं और उन्हें अलग से देखे जाने पर वे निर्जीव ही हैं। इसी प्रकार, सामाजिक परिघटनाओं की व्याख्या व्यैक्तिक परिघटनाओं के अध्ययन से नहीं की जा सकती।

सामाजिक एकीकरण इसीलिए संभव होता है कि समाज के सभी अंग समग्र समाज को क़ायम रखने के लिए कार्य करते हैं। सरल समाजों में, मान्यताएँ एवं मनोभाव एक बृहत्तर दबावकारी शक्ति होते हैं और एक जैसे कार्यों में लगे सभी व्यक्ति पूरे समाज को क़ायम रखने के लिए काम करते हैं। कोई भी सरल समाज सजातीय होता है और ऐसे समाज के लोग एक–दूसरे पर निर्भर नहीं होते क्योंकि हर व्यक्ति एक जैसे कार्यों में रत होता है। जब जनसंख्या बढ़ती है तो समाज अपेक्षाकृत जटिल हो जाता है और लोगों के कामकाजों में फर्क नज़र आने लगता है। श्रम–विभाजन और कार्यों को विशिष्टीकरण के फलस्वरूप लोग एक होने लगते हैं, जबकि हर्बर्ट स्पेंसर ने समाजों को सरल एवं जटिल दोनों रूपों में प्रदर्शित किया, इसी प्रकार एमिल दर्खाइम ने समाजों को यांत्रिक एवं जैविक एकात्मकता के रूप में दर्शाया। दर्खाइम ने हर्बर्ट स्पेंसर द्वारा प्रस्तुत समाज के उद्ववविकासवादी दृष्टिकोण को अपनाया। दर्खाइम का मानना था कि स्पेन्सर ने इस बात को मान लिया है कि सामाजिक जगत में मेल–मिलाप की भावना मौजूद थी और अपने आनुभाविक अध्ययन में उन्होंने इस पूर्वसंकल्पित धारणा पर प्रश्न नहीं किया।

बोध प्रश्न 1

i) दर्खाइम किस प्रकार कॉम्त के प्रत्यक्षवाद के विचार से प्रभावित थे? स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

ii) क्या समाज का स्थान व्यक्ति–विशेष से पहले है? दर्खाइम के दृष्टिकोण के संदर्भ में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4.5 मुख्य विचार

आइए,दर्खाइम के लेखन में अभिव्यक्त कुछ महत्वपूर्ण विचारों को समझें।

4.5.1 समाज में श्रम–विभाजन

श्रम का विभाजन समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान है और दर्खाइम ने अपनी व्याख्या को पूरी तरह आर्थिक लेन–देन तक सीमित नहीं रखा। उनका मानना था कि श्रम–विभाजन एक सामाजिक परिघटना है और सामाजिक व्याख्या को गुणपरक बनाता है। उनका मानना था, जब किसी प्रदत्त क्षेत्र में जनसंख्या का आकार और घनत्व बढ़ता है तो उत्तरजीविता के लिए अंतःक्रिया एवं संघर्ष में वृद्धि होती है। व्यक्तियों के बीच उत्तरजीविता हेतु इस संघर्ष से बचने के लिए आधुनिक समाजों में सामाजिक विभेदीकरण अपनाया जाता है। लोग कुछ खास किस्म के प्रकार्यों के लिए एक–दूसरे पर कहीं अधिक निर्भर होने लगते हैं। इससे सामाजिक सामजस्य पनपता है और आधुनिक समाजों में व्यक्तिवाद में वृद्धि देखी जाती है। परंतु ऐसे समाज में आपसी तालमेल और मेल–मिलाप बनाए रखना भी जरूरी होता है। अपने लेखों में दर्खाइम ने स्पष्ट किया कि लोग किस प्रकार सामाजिक बंधनों द्वारा एक–दूसरे से और समाज से जुड़े हैं। समाज में श्रम–विभाजन विषयक उनके डॉक्टर की उपाधि हेतु शोध–निबंध में 'सामाजिक एकात्मकता' की संकल्पना पर ही ध्यान केंद्रित किया गया। वे रूसो के इस विचार से प्रभावित थे कि सामाजिक एकात्मकता न तो राजनीति पर निर्भर होती है और न ही अर्थव्यवस्था पर। दर्खाइम का मानना था कि एकात्मकता दो विशिष्ट तरीकों से व्यक्त की जा सकती है, जो हैं – 'यांत्रिक' और 'जैविक'। याँत्रिक एकात्मकता वाले लघु समाजों में वैयक्तिक स्वायत्तता न्यूनतम होती है और समाज मान्यताओं की एकरूपता द्वारा अभिलक्षित होता है। कार्यों का कोई विशिष्टीकरण नहीं होता और श्रम–विभाजन बहुत कम देखा जाता है। सामूहिक अंतःकरण समूह में सभी लोगों के बीच व्याप्त होता है। व्यक्ति को समग्र समाज से जोड़ने वाले संबंध गहरे होते हैं और यहाँ पूर्ण सामाजिक एकीकरण देखा जाता है। ऐसे समाज में धर्म का बोलबाला होता है और समाज में किसी भी व्यक्ति का स्थान नातेदारी से निर्धारित होता है। यहाँ दाण्डिक कानून–व्यवस्था भी लागू होती है जो अपराध करने वालों को बलपूर्वक दण्डित करती है ताकि मूल मान्यताओं एवं मूल्यों को फिर से पुष्ट किया जा सके। यह कानून दमनकारी होता है और अपराध दोष के लिए कठोरतापूर्वक दण्डित करता है।

दूसरी ओर, जैविक एकात्मकता वाले समाजों में कहीं अधिक श्रम–विभाजन देखा जाता है और विशिष्ट कार्यों के लिए लोग समग्र समाज की बजाय एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं। ऐसे समाज सघन होते हैं और किसी विशाल भू-भाग पर फैले होते हैं। यहाँ राजनीतिक, विधिक एवं आर्थिक संस्थाएँ कहीं अधिक विशिष्टीकृत होती हैं और लोगों पर सामूहिक अंतःकरण का बल अदृढ़ कर दिया जाता है। यहाँ लोगों के बीच वैयक्तिक असहमति कहीं अधिक होती है और समग्र समाज के साथ लोगों का एकीकरण भी दृढ़ होता है। यहाँ क्षतिपूरक नियम कारगर सिद्ध होता है जिसका उद्देश्य अपराधियों को उनके कुकर्मों के लिए दंडित कर, उन्हें सही राह पर लाना होता है।

4.5.2 सामाजिक तथ्य

उपयोगितावादी विचारकों जॉन स्टुअर्ट मिल एवं जरमी बैंथम के विचारों से अलग, दर्खाइम का मानना था कि लोग स्वायत्त नहीं हैं और वे समाज में उपयोगितावादी

लेन–देन में यूँ ही नहीं लगे रहते हैं। उनके अनुसार, समाज में तमाम सामाजिक तथ्य लोगों पर एक दबाव बनाए रखते हैं। उन्होंने *द रूल्स ऑफ़ सोशियॉलिजिकल मैथड* नामक पुस्तक इसलिए लिखी कि वे समाजशास्त्र की विषय–वस्तु हेतु क्रमबद्ध अन्वेषण के लिए एक प्राधार विकसित करना चाहते थे। वे समाजशास्त्र की प्रस्थिति समाज के एक ऐसे विज्ञान के रूप में भी प्रमाणित करना चाहते थे जो मनोविज्ञान से भिन्न हो। ठीक जिस प्रकार भौतिक विज्ञान–शास्त्र प्राकृतिक तथ्यों से कार्य–व्यापार करते हैं, वैसे ही, उनके अनुसार, समाजशास्त्र को एक वैज्ञानिक विषय–क्षेत्र की भाँति सामाजिक तथ्यों से क्रिया–व्यापार करना चाहिए और ये सामाजिक तथ्य समाज की सम्पति कहलाते हैं। उनका मानना था कि ठीक प्राकृतिक तथ्यों की भाँति, सामाजिक तथ्य भी बाह्य होते हैं। इसका अर्थ है कि वे उन मान्यताओं अथवा मतों पर ध्यान न देते हुए एक स्वतंत्र अस्तित्व रखेंगे जो कि उनके विषय में हो सकते हैं। साथ ही, सामाजिक तथ्य आचरण करने के वे तरीके होते हैं जो सह–बाह्य होते हैं और व्यक्ति पर एक दबाव बनाकर रखते हैं। सामाजिक तथ्य प्रायः समस्त समाज में विसरित होते हैं। भोजन करना, उदाहरणार्थ, एक वैयक्तिक तथ्य है जबकि माता–पिता की भूमिका निभाना एक ऐसा सामाजिक तथ्य है जिसमें समस्त समाज लगा रहता है। सामाजिक तथ्य अपना अस्तित्व वैयक्तिक अंतःकरण के बाहर रखते हैं और किसी व्यक्ति के जन्म से पूर्व एक प्रत्यक्ष अस्तित्व दर्शाते हैं। अतएव, उनका अस्तित्व बाह्य ही होता है जो कि पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलता है। समाज का स्थान व्यक्ति से ऊपर है और जन्म लेने वाले व्यक्ति समाज के नियमों के अधीन होते हैं। सामाजिक तथ्यों के प्रेक्षणार्थ दर्खाइम ने कुछ नियम प्रस्तुत किए हैं। ये हैं – उन्हें वस्तुओं के रूप में लें, न कि विचारों के रूप में; वे अपने आप में विशिष्ट हों; और वे समाज में एक नियमित प्रतिमान दर्शाने वाले हों।

दर्खाइम ने समाज का अध्ययन करने के लिए अपनी पुस्तक *द रूल्स ऑफ़ सोशियॉलोजिकल मैथड* में एक कायिक अनुरूपता को लागू किया और स्वस्थ एवं अस्वस्थ समाजों के बीच भेद करने के लिए एक कसौटी तैयार की। स्वाभाविक और अस्वाभाविक से दर्खाइम का सरोकार टॉकवील के अस्वाभाविक के सरोकार से प्रभावित था। आधुनिक समाज में व्यवस्था लागू करने में दर्खाइम टॉकवील के इस दृष्टिकोण से प्रभावित थे कि सामाजिक एकीकरण में सर्वमान्य मूल्य एवं मान्यताएँ भी अपनी भूमिका निभाते हैं। दर्खाइम के अनुसार, किसी सामाजिक परिघटना को तभी स्वाभाविक कहा जाएगा जब वे समग्र समाज में सामान्य रूप से वितरित हो और सामान्य दशाओं में अन्य समाजों में भी देखी जाती हो। किसी सामाजिक परिघटना को उस स्थिति में अस्वाभाविक कहा जाएगा जब वह उस परिघटना से विसामान्य हो जो समाज में आमतौर पर प्रचलित है। दर्खाइम का मानना था कि अपराध एक सामान्य सामाजिक परिघटना है क्योंकि ऐसी घटनाएं आमतौर पर सभी समाजों में नजर आती हैं और सामाजिक प्राधार में अपना काम करती हैं। उनके अनुसार, समाज में आधारभूत सामजिक मूल्यों एवं मनोभावों को क़ायम रखने में अपराध की अपनी ही भूमिका है। अपराध, तदनुसार, सामाजिक एकीकरण क़ायम रखने में अपनी भूमिका निभाता है। समाज में अपराध एक प्रतिक्रिया को आवश्यक बना देता है, जैसे कि दण्ड, जो अपराध द्वारा आहत सामूहिक मूल्यों एवं मनोभावों को प्रमाणित करता है।

4.5.3 आत्महत्या

दर्खाइम में आत्महत्या के अध्ययन से इसलिए लगाव था क्योंकि सन् 1850 में यूरोप में उद्योगीकरण की शुरूआत के साथ ही आत्महत्याओं की संख्या मे अति वृद्धि देखी गई

थी। उद्योगीकरण ने समाज को बढ़े व्यक्तिवाद और सामाजिक एकीकरण के ह्रास की ओर प्रवृत्त किया। आत्महत्या का कारण तंत्रिका–विकार अथवा मद्यपान जैसी वैयक्तिक परिघटनाओं को माना गया। दर्खाइम का मानना था कि आत्महत्या की व्याख्या वैयक्तिक अथवा मनौवैज्ञानिक कारकों द्वारा नहीं की जा सकती, बल्कि इसे सामाजिक संस्थाओं एवं व्यक्ति विशेष के बीच संबंध का विश्लेषण कर स्पष्ट किया जाना चाहिए। अतः, आत्महत्या का अध्ययन करने के लिए, दर्खाइम ने विभिन्न यूरोपीय देशों की आत्महत्या दरों को ध्यान में रखकर इनका विश्लेषण किया।

दर्खाइम को ज्ञात था कि सामाजिक विज्ञान–शास्त्रों में प्रयोगात्मक विधि प्रयोग नहीं कि जा सकती, जैसा कि प्राकृतिक विज्ञान–शास्त्रों में किया जाता है। अतएव, उन्होंने आत्महत्या का एक कारणात्मक विश्लेषण किए जाने का बीड़ा उठाया (मॉरिसन 1995:164)। दर्खाइम ने किसी प्रदत्त समाज में मृत्यु संख्या और किसी प्रदत्त समाज में आत्महत्या के प्रतिमान का संदर्भ देने के लिए 'सामाजिक आत्महत्या दर' शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने कहा कि किसी भी समाज में आत्महत्या की दर अन्य सामाजिक संस्थाओं, जैसे कि विवाह, परिवार, आदि एवं धार्मिक संस्थाओं से जुड़ी होती है। उन्होंने, इसी कारण, आत्महत्या का अध्ययन समूहगत रूप से किया, न कि व्यक्तिगत रूप से। उन्होंने फ्रांस, इंग्लैंड, जर्मनी एवं डेनमार्क जैसे देशों में आत्मघाती मौतों की संख्या विषयक आँकड़ों का अध्ययन किया और उसे सामाजिक कारकों से जोड़ा। उनका मानना था कि यह एक सामाजिक तथ्य है कि एक समाज विशेष एक निश्चित आत्महत्या दर को दर्शाता है और यह भी कि यह सामाजिक आत्महत्या दर आत्महत्या के एक ऐसे समाजशास्त्रीय अध्ययन की ओर प्रवृत्त करती है, जो कि किसी मनोवैज्ञानिक अध्ययन से भिन्न होता है।

दर्खाइम ने दो बातों के आधार पर आत्महत्या के विभिन्न रूपों की व्याख्या की; अर्थात्, लोग समाज में संबंध विकसित करने में किस प्रकार सक्षम होते हैं, और समाज द्वारा लोगों को कैसे नियंत्रित किया जाता है। उन्होंने लोगों के सामाजिक एकीकरण स्तर का संदर्भ देते हुए अहंउन्मुख एवं परोपकारिता आत्महत्याओं का वर्णन किया। उन्होंने लोगों के सामाजिक नियंत्रण–स्तर का संदर्भ देते हुए व्युत्पन्न प्ररूप (anomic) एवं भाग्यवादी आत्महत्याओं की भी जाँच–पड़ताल की। सामाजिक संबंधों के कमज़ोर पड़ जाने के कारण लोग स्वयं को समाज से अलग कर लेते हैं। लोग स्वयं की ओर ही रुख कर लेते हैं और वैयक्तिक लक्ष्य सामाजिक लक्ष्यों पर हावी हो जाते हैं। पारिवारिक, धार्मिक एवं राजनीतिक संस्थाओं के साथ लोगों के संबंध क्षीण पड़ जाते हैं और वे स्वयं पर कहीं अधिक निर्भर रहने लगते हैं। अहंउन्मुख आत्महत्या सामाजिक संबंधों के अभाव और समाज में समूहों के प्रति लोगों का लगाव घटने से परिणत होती है। उदाहरण के लिए, दर्खाइम का मानना था कि पारिवारिक जीवन समाज के प्रति कर्तव्यों एवं दायित्वों को जन्म देता है और व्यक्ति को स्वयं से निकलकर एक संस्था के साथ बेहतर संबंध स्थापित करने का अवसर भी देता है। इसका आत्महत्या पर एक नियंत्रणकारी प्रभाव पड़ता हैं। अहंउन्मुख आत्महत्या से नितांत भिन्न है –परार्थोन्मुख आत्महत्या, जिसमें लोग समाज के साथ अत्यधिक एकीकृत होते हैं और समाज के लिए ही अपने जीवन का उत्सर्ग कर देते हैं। दर्खाइम ने आत्महत्या के इस रूप को समझने के लिए जनजातीय समाजों का अध्ययन किया। उदाहरण के लिए, रणक्षेत्र में फ़ौजी सैनिक राष्ट्र, राज्य की सेवार्थ अपनी जान न्यौछावर कर देते हैं। इस प्रकार, प्राचीन हिन्दू समाज की विधवाएँ 'सती' हुआ करती थीं और पति की चिता के साथ स्वयं भी आत्मदाह

कर लेती थीं। ऐसे मामलों में, लोगों को समाज के लिए अपनी जान देने को बाध्य किया जाता है और ऐसा करने के लिए उन्हें सामाजिक रूप से सम्मानित भी किया जाता है। आत्महत्या का तीसरा रूप, जिसका दर्खाइम ने विश्लेषण किया, व्युत्पन्न प्ररूप आत्महत्या थी, जो कि तब की जाती है जब सामाजिक नियंत्रण ढीला पड़ जाता है। उदाहरण के लिए, आर्थिक समृद्धि अथवा विपत्ति के दिनों में इस प्रकार की आत्महत्या के स्तरों में वृद्धि हो सकती है। तदनुसार, समाज लोगों के लिए ऐसे लक्ष्य एवं अपेक्षाएँ तय करता है जो हासिल किए जा सकते हों। लोग निराश हो सकते हैं और इससे अपेक्षाएँ नियंत्रित करने में समाज की विफलता ही सामने आती है। आत्महत्या का यह रूप तब सामने आता है जब अपेक्षाएँ बेलगाम हों और अर्थव्यवस्था समाज में अन्य संस्थाओं पर हावी हो, साथ ही, सामाजिक व्यवस्था के भीतर लोगों के विशिष्ट स्थान हेतु धर्म जैसा कोई दोषमोचक या सही ठहराने वाला तंत्र विद्यमान न हो। आत्महत्या का चौथा रूप भाग्यवादी आत्महत्या है, जो कि तब दिखाई देता है जब लोग समाज द्वारा बेहद नियंत्रित हों। दर्खाइम इस प्रकार की आत्महत्या को दासों द्वारा आत्महत्या का उदाहरण देकर समझाते हैं।

4.5.4 धर्म और समाज की अभिव्यक्ति

दर्खाइम की पुस्तक *दि एलिमेन्टरी फॉर्म्स ऑफ़ रिलिजस लाइफ़* सन् 1912 में प्रकाशित हुई। दर्खाइम वर्ष 1902 से ही धर्म के अध्ययन में रुचि रखते थे क्योंकि वे धर्म को एक प्रमुख सामाजिक संस्था के रूप में देखते थे। साथ ही, उनकी समाजशास्त्रीय पत्रिका *ले एनी सोसिऑलॉजिके* में प्रकाशित होने वाले अधिकांश लेख धर्म के विषय पर ही ध्यान केन्द्रित करते थे। उक्त पुस्तक (दि एलिमेन्टरी फ़ार्म्स ऑफ़ रिलिजस लाइफ़) में वह धर्म के उन तत्वों अथवा घटकों का अन्वेषण करना चाहते थे जो धार्मिक जीवन को संभव बनाते थे। उन्होंने आदिम धर्म की ओर रुख़ किया और यह मानते हुए एक उद्ववविकासात्मक दृष्टिकोण अपनाया कि आदिम धर्म के मूल प्राधार का अध्ययन करने से आमतौर पर धर्म के घटकों को समझा जा सकता है। उन्होंने प्रेक्षण एवं अन्वेषण पर आधारित धर्म का एक धार्मिक अध्ययन प्रतिपादित किया। दर्खाइम के अनुसार, धर्म जगत की सार्थकता समझने में लोगों की मदद करता है और वे समाज को मानवीकृत भी करता है। उनका मानना था की धर्म मान्यताओं एवं कर्मकाण्डों से मिलकर बना है। उनके अनुसार, मान्यताएँ वे अवधारणाएँ हैं जो 'पवित्र' की ओर संकेद्रित होती हैं। कर्मकाण्ड, दूसरी ओर, वे कृत्य हैं जो पवित्र की ओर निर्देशित होते हैं। उन्होंने कहा कि सार्वजनिक रूप से धार्मिक विश्वदृष्टि दो आधिकार क्षेत्रों में विभाजित है, अर्थात्– पवित्र और लौकिक। कोई चीज़, मान्यता या कृत्य पवित्र होता है क्योंकि वे समाज द्वारा पवित्र माना जाता है। आइए, पवित्र एवं लौकिक संबंधी संकल्पनाओं को और विस्तार से समझने के लिए बॉक्स 4.3 देखें।

बॉक्स 4.3 पवित्र एवं लौकिक संबंधी संकल्पनाएँ

''कुछ विद्वानों का मत है कि "पवित्र" और "लौकिक" में स्पष्ट अंतर है। उनके अनुसार, यह विभेद वैसे ही है जैसे कि अन्य विपरीतताओं के बीच अंतर, जैसे– 'पारलौकिक और इहलौकिक' के बीच और 'साधारण और असाधारण' के बीच। दर्खाइम (1912) के अनुसार भी "पवित्र" लौकिक वस्तुओं से सर्वथा भिन्न होता है। और उसे पृथक रखा जाता है। लौकिक का अभिप्राय है– अपवित्र, धर्मनिरपेक्ष, ऐहिक।

कर्मकांड या अनुष्ठान ही ऐसे अवसर हैं जब 'पवित्र' और सांसारिक वस्तुओं के बीच संचार होता है। यदि कोई व्यक्ति 'पवित्र' कार्य में हिस्सा लेना चाहे तो पहले उसे अपने शुद्धिकरण की प्रक्रिया से अथवा किसी अन्य निर्दिष्ट प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। कई विद्वानों ने इस "पवित्र" तथा "लौकिक" के पार्थक्य की आलोचना भी की है। चर्च या मंदिर आदि को धर्म का केन्द्र मानने वाले इस प्रकार के पार्थक्य को बढ़ावा देते हैं। विद्वानों का यह भी कहना है कि दैनिक जीवन की लौकिक या सांसारिक गतिविधियों में हमें "पवित्रता" का आभास होता है तो दूसरी ओर दैनिक सांसारिक जीवन में पवित्र और लौकिक के बीच अंतःक्रिया होती ही रहती है।'' (ईएसओ 15, खण्ड 1:19)

धर्म का मूलभूत आधार इसीलिए 'सामाजिक' को ही माना जाता है। लौकिक में पवित्र को संदूषित करने की क्षमता होती है। तदनुसार, उनका कहना है कि धर्म ने मनुष्य को अपनी विश्वदृष्टि के वर्गीकरण का एक आधार प्रदान किया।

4.5.5 सामूहिक चेतना

एक अन्य मूल अवधारणा जिस पर दर्खाइम ने श्रम–विभाजन के अंतर्गत ध्यान केंद्रित किया, वे है – 'सामान्य अंतःकरण' या 'सामूहिक चेतना'। उनके अनुसार, यह सामूहिक चेतना ही समग्र समाज द्वारा धारित मान्यताओं, प्रथाओं एवं सामान्य मनोभाव का मुख्य भाग होती है और यही सामाजिक प्रयोजन प्रदान करती है और सामाजिक जीवन का संरचित करती है। सामूहिक चेतना नैतिक एवं मानसिक मनोभावों की किसी समरूपता से पहचानी जाती है। यह सामूहिक चेतना वैयक्तिक चेतना से भिन्न होती है। यह समग्र समाज में विसरित होती है। सामूहिक चेतना की भूमिका सामाजिक एकात्मकता क़ायम रखने में भी होती है और विभिन्न पीढ़ियों को परस्पर जोड़ने में भी। सामूहिक चेतना की विस्तृति, प्रबलता एवं एकरूपता जितनी अधिक होगी, उतना ही बेहतर लोगों का सामूहिक मान्यताओं एवं मनोभावों के प्रति लगाव होगा (मॉरिसन 1995)। आइए, सामूहिक चेतना एवं समाज के विषय में और अधिक जानने के लिए बॉक्स 4.4 देखें।

बॉक्स 4.4 सामूहिक चेतना और समाज

''दर्खाइम सामूहिक चेतना का वर्णन किसी समाज के औसत सदस्यों की सामान्य मान्यताओं और मनोभावों के रूप में करते हैं। इन मान्यताओं एवं मनोभावों की व्यवस्था का अपना ही एक जीवन है। इसका पूरे समाज मे अस्तित्व बना हुआ है। इसका विशिष्ट स्वरूप है, जो इसे एक वास्तविकता प्रदान करता है। सामूहिक चेतना उन विशेष दशाओं से स्वतंत्र होती है जिनमें लोगों को रखा गया हो। यह किसी समाज के सम्पूर्ण क्षेत्र – बड़े और छोटे कस्बों एवं गाँवों में फैली होती है। यह सभी व्यवसायों या पेशों आदि में सर्वमान्य होती है। यह विभिन्न पीढ़ियों को एक–दूसरे से जोड़ती है। लोग समाज में आते हैं और चले जाते हैं जबकि सामूहिक चेतना निरंतर बनी रहती है। य़द्यपि सामूहिक चेतना केवल व्यक्तियों द्वारा ही निर्मित होती है, इसकी सीमा व्यक्ति विषेश तक सीमित नहीं होती बल्कि उससे भी उच्च स्तर पर क्रियान्वित होती है।

''विस्तार एवं बल के अर्थ में, सामूहिक चेतना एक समाज से दूसरे में भिन्न होती है। अल्पविकसित समाजों में सामूहिक चेतना वैयक्तिक चेतना को अपने अन्दर

ही समा लेती है। इस प्रकार के समाजों में सामूहिक चेतना का विस्तार स्पष्ट एवं सर्वव्यापी होता है। उदाहरणार्थ, आदिम समाजों में प्रचलित सामाजिक नियंत्रण और निशेध प्रत्येक सदस्य के ऊपर दृढ़तम रूप से आरोपित होते हैं, और सभी सदस्य इनका वर्चस्व मानते हैं। यह सामूहिक चेतना ही है जो व्यक्तियों के अस्तित्व को नियंत्रित करती है। परस्पर अनुभव की गई सामूहिक भावनाओं में बहुत अधिक ताक़त होती है तथा निषेधों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों पर ये कठोर दण्ड के रूप में प्रतिबिम्बित होती हैं। किसी समाज की सामूहिक चेतना जितनी दृढ़तर होगी उतना ही व्यापक अपराध के विरोध में या अन्य किसी सामाजिक आदेश के उल्लंघन पर आक्रोश होगा।'' (ईएस ओ 13, खण्ड 3:41)

बोध प्रश्न 2

i) 'सामाजिक तथ्य' से दर्खाइम का क्या तात्पर्य है? नीचे दिए गए स्थान में अपना उतर लिखें।

.....

.....

.....

ii) परार्धोन्मुख आत्महत्या क्या है? नीचे दिए गए स्थान में अपना उत्तर लिखें।

.....

.....

.....

4.6 सारांश

इस इकाई में, हमने दर्खाइम की कृतियों में अन्य दार्शनिकों के प्रभाव को जाना। दर्खाइम कॉम्त के प्रत्यक्षवाद और हर्बर्ट स्पेंसर के प्रकार्यवाद से काफ़ी प्रभावित थे। वे रूसो के नैतिकता विषयक और टॉकवील के समाज में मान्यता एवं मूल्यों की सामान्यता विषयक विचारों से भी प्रभावित थे। उन्होंने, हाँलाकि, पिछले दार्शनिकों द्वारा समर्थित अमूर्त सिद्धांतों का खंडन किया। किया। उन्होंने समाजशास्त्र की प्रस्थिति को एक प्रत्यक्षवादी विज्ञान के रूप में स्थापित किया। उनका मानना था कि समाजशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो सामाजिक तथ्यों का अध्ययन वैसे ही करता है जैसे कि प्राकृतिक विज्ञान तथ्यों का अध्ययन करता है। अपनी पुस्तक 'सुइसाइड' में दर्खाइम ने आत्महत्या का एक सामजिक तथ्य के रूप में विश्लेषण किया। यहाँ हमने यह भी जाना कि दर्खाइम ने अपनी सभी प्रमुख रचनाओं में निश्चित तौर पर माना कि समाज का अस्तित्व व्यक्ति–विशेष से पहले का है और समाज का वैयक्तिक परिघटनाओं के माध्यम से स्पष्ट नहीं किया जा सकता। सामाजिक एकीकरण तब होता है जब लोग समाज में सशक्त सामाजिक बंधनों द्वारा जुड़े होते हैं। उनका मानना था कि नैतिकता समाज से जुड़ी होती है और व्यक्ति के भीतर से नहीं उभरती। उनका, इसलिए, मानना है कि धर्म, नैतिकता, आत्महत्या, शिक्षा आदि को सामाजिक जीवन के संबंध में ही समझा जाना चाहिए।

4.7 संदर्भ

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005). *समाजशास्त्रीय सिद्धांत* (ईएसओ 13), नई दिल्ली : इग्नू

मॉरिसन, के (1995), *मार्क्स, दर्खाइम, वेबर : फ़ार्मेशन्स ऑफ़ मॉर्डन सोशल थॉट्स,* लन्दन : सेज।

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) दर्खाइम, ऑगस्ट कॉम्त द्वारा प्रस्तुत प्रत्यक्षवाद से प्रभावित थे। कॉम्त का मानना था कि सभी विज्ञान–शास्त्र कारणात्मक विश्लेषण के अधीन हो सकते हैं और सामान्यीकरण जैसे नियम प्रस्तुत कर सकते है। कॉम्त ने विभिन्न विज्ञान–शास्त्रों का एक सोपानक्रम विकसित किया और इस सोपानक्रम में सामाजिक विज्ञान–शास्त्रों को सबसे निचले पायदान पर और जीवविज्ञान जैसे प्राकृतिक विज्ञान–शास्त्रों को सर्वोच्य पायदान पर रखा। दर्खाइम का मानना था कि समाजशास्त्र प्राकृतिक विज्ञान–शास्त्रों जैसे सामान्यीकरणों जैसे कानून खोज सकता है। उनका मानना था कि समाज का व्यक्तियों से अलग अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है और इसे वैज्ञानिक विश्लेषण पर टिका होना चाहिए।

ii) दर्खाइम का मानना था कि समाज अद्वितीय (suigeneris) है और व्यक्ति–विशेष से पहले समाज का अपना अस्तित्व होता है। उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल एवं जरमी बैंथम द्वारा समर्थित उपयोगितावादी सामाजिक सिद्धांत को निरस्त किया। उन दोनों के अनुसार, लोग स्वायत्त होते हैं और बृहद् सामाजिक नियमों से नियंत्रित नहीं होते। इनके विपरीत, दर्खाइम का निश्चित तौर पर मानना था कि समाज की अहमियत व्यक्ति विशेष से पहले की है। उनके अनुसार, समाजशास्त्र में उन सामाजिक तथ्यों का अध्ययन किया जाता है जो दबावकारी और बाह्य होते हैं। इन सामाजिक तथ्यों को वैयक्तिक तथ्यों तक सीमित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, उनका मानना था कि नैतिकता को 'समूह' के संदर्भ में स्पष्ट किया जा सकता है, न कि वैयक्तिक परिघटना के संदर्भ में।

बोध प्रश्न 2

i) दर्खाइम के अनुसार, सामाजिक तथ्य से आशय समाज में व्याप्त चिंतन, व्यवहार, मत, आदि के सामान्य तरीकों से हैं। ये किसी भी व्यक्ति के प्रति बाह्म होते हैं अर्थात् वे लोगों की इच्छा अथवा कामना से स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं और उन पर दबाव बनाए रखते हैं।

ii) परार्थोन्मुख आत्महत्या से दर्खाइम का अभिप्राय उन मामलों से है जिनमें लोग अपना जीवन समाज की ख़ातिर त्याग देते हैं। यह उन लोगों द्वारा किया जाता है जो समाज के साथ अत्यधिक एकीकृत होते हैं।

इकाई 5 सामाजिक तथ्य*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 समाज के विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबंध

5.3 समाजशास्त्र ''सामाजिक तथ्यों'' के अध्ययन के रूप में

5.3.1 सामाजिक तथ्य

5.3.2 सामाजिक तथ्यों के प्रकार

5.3.3 सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएं

5.3.4 बाह्यता एवं बाध्यता

5.4 समाजशास्त्रीय पद्धति

5.4.1 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम

5.4.2 सामान्य एवं व्याधिकीय (pathological) में विभेद के नियम

5.4.3 सामाजिक प्ररूप के वर्गीकरण के नियम

5.4.4 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम

5.5 सारांश

5.6 संदर्भ

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके लिए यह समझना संभव होगा कि किस प्रकार दर्खाइम ने

- विज्ञान की विशेषताओं का पता लगाया।
- सामाजिक तथ्यों की परिभाषा के आधार सुनिश्चित किये।
- यह बताया कि समाजशास्त्र अन्य विषयों से कैसे भिन्न है।
- समाज के प्रकारों का वर्णन किया।
- सामाजिक तथ्यों का वर्गीकरण किया।
- सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों को सूचीबद्ध किया।
- तथ्यों की व्याख्या के नियमों को सुनिश्चित किया।

5.1 प्रस्तावना

एमिल दर्खाइम (1858–1971) को सबसे अधिक एक स्वतंत्र शैक्षणिक विषय के रुप में समाजशास्त्र को मान्यता दिलाने के प्रयासों के लिए जाने जाते हैं। दर्खाइम ने समाज के विज्ञान के विचार के लिए ऐसी मान्यता स्थापित की जिससे आधुनिक समाज की

* इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृतः *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 10 का नीता माथुर द्वारा लघु संशोधन।

नैतिक व बौद्धिक समस्याओं के अध्ययन में योगदान किया जा सका। दर्खाइम की समाजशास्त्र की अवधारणा का विवेचन करते समय तीन महत्वपूर्ण पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया जायेगा। (अ) सामाजिक विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबंध, (ब) समाजशास्त्र 'सामाजिक तथ्यों' के अध्ययन के रुप में तथा (स) समाजशास्त्रीय पद्धति।

5.2 समाज के विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबंध

मनुष्य सदैव समाज में रहता आया है तथा समाज के सदस्य इसकी प्रकृति के बारे में सोचते रहे हैं। यह कुछ इस प्रकार से कहना हुआ कि मनुष्य के पास शरीर है तथा उसे अपने शरीर के बारे में सदैव कुछ जानकारी रही है। शरीर के भिन्न–भिन्न भागों की रचना और उसकी कार्यविधि के बारे में जानकारी क्रमशः शरीर रचना विज्ञान तथा शरीर–क्रिया विज्ञान जैसे विशिष्ट विषयों के रूप में बाद में विकसित हुई। अतः हमारे शरीर व हमारे निकट की अन्य वस्तुओं के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान का विकास इस ज्ञान को प्राप्त करने की नवीन पद्धतियों के साथ–साथ हुआ। इस पद्धति को वैज्ञानिक पद्धति कहा गया। इसी प्रकार समाज के बारे में, उसके कार्य करने के बारे में व इसके स्वरूपों में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानने का प्रयास किया जाता है। समाज के अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण लाने में दर्खाइम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अतः इस इकाई में यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि उन्होंने इस दिशा में क्या कार्य किया तथा इस कार्य को कैसे किया?

दर्खाइम के जीवन काल में समाजशास्त्र एक अलग विषय के रूप में उभरा था। इससे पहले विश्वविद्यालयों के विद्वानों सहित अधिकतर शिक्षित व्यक्तियों की दृष्टि में समाजशास्त्र एक नाम मात्र का विषय था। जब दर्खाइम ईकाल नॉरमेल (Ecole Normale) में विद्यार्थी थे उस समय फ्रांस में सामाजिक विज्ञान की एक भी प्रोफेसरशिप नहीं थी। यह 1887 में ही सम्भव हो सका जब फ्रांस सरकार ने बॉर्दो विश्वविद्यालय (University of Bordeaux) में दर्खाइम के लिये प्रोफेसर का पद बनाया। इसके कई वर्षों बाद उन्हें सॉरबॉन (पेरिस) में समाजशास्त्र के प्रोफेसर की उपाधि से सम्मानित किया गया।

इन परिस्थितियों में दर्खाइम के सामने प्रत्यक्ष रूप से समाजशास्त्र की प्रकृति व इसके क्षेत्र की रूपरेखा तैयार करने का कार्य था। दर्खाइम ने सामाजिक विद्वानों को प्राकृतिक विज्ञानों से अलग माना क्योंकि सामाजिक विज्ञान मानव संबंधों से जुड़े हुए हैं। फिर भी प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोग की जाने वाली पद्धति को सामाजिक विज्ञानों में भी प्रयोग किया जा सकता है। उन्होंने समाजशास्त्र को दर्शनशास्त्र तथा मनोविज्ञान से अलग करते हुए उसकी प्रकृति का एक सामाजिक विज्ञान के रूप में प्रतिपादन किया। दर्शनशास्त्र का संबंध विचारों व धारणाओं से है जबकि विज्ञान का संबंध वस्तुपरक वास्तविकताओं से है। दर्शनशास्त्र एक ऐसा स्त्रोत है जहां से सभी विज्ञानों का उद्‌भव हुआ अतः दर्खाइम ने समाजशास्त्र के स्त्रोत के रूप में दर्शनशास्त्र के महत्व को हमारे सामने रखा। इसी बात को चित्र 5.1 में दिखाया गया है।

चित्र 5.1 सभी विज्ञानों के स्त्रोत के रूप में दर्शनशास्त्र

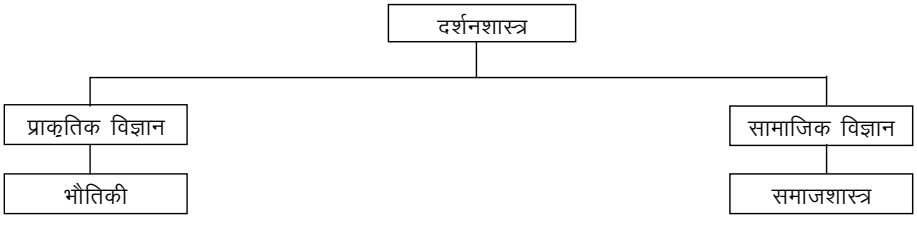

दर्खाइम ने 1892 में प्रकाशित अपनी पुस्तक, *मॉन्टेस्क्यू एण्ड रूसो,* में सामजिक विज्ञान की स्थापना के सामान्य प्रतिबंधों को स्थापित किया, जो समाजशास्त्र पर भी लागू होते हैं। आइए उन पर एक दृष्टि डालें।

i) सर्वप्रथम उन्होंने यह बताया कि विज्ञान का मानवीय ज्ञान व विचारों के साथ–साथ विस्तार नहीं हो सकता। मस्तिष्क में आने वाले प्रत्येक प्रश्न का सत्यापन विज्ञान द्वारा नहीं किया जा सकता। यह संभव है कि किसी दार्शनिक अथवा कलाकार का कुछ इस प्रकार का उद्देश्य होता हो परन्तु यह निश्चित रूप से विज्ञान के दायरे में नहीं आता। विज्ञान का एक विशिष्ट क्षेत्र है अथवा उसकी अपनी एक विषय–वस्तु होती है। इसकी परिधि में सम्पूर्ण ज्ञान नहीं आता।

ii) दूसरे, वैज्ञानिक खोज या छानबीन के लिये एक निश्चित क्षेत्र होना आवश्यक है। विज्ञान का संबंध तथ्यों व वस्तुपरक वास्तविकताओं से है। सामाजिक विज्ञान के अस्तित्व के लिए भी उसकी एक निश्चित विषय–वस्तु का होना आवश्यक है। दर्खाइम ने यह बताया कि यद्यपि नियम, परम्परा, धर्म आदि वास्तविकताओं के बारे में दार्शनिक जानते हैं, लेकिन जब वे वास्तविकताओं को मानव इच्छा की अभिव्यक्तियों के रूप में देखते हैं तो इनकी यथार्थता समाप्त हो जाती है। इस प्रकार तथ्यों के बाह्य स्वरूपों का परीक्षण करने की अपेक्षा दर्शनशास्त्र व धर्म के तहत् किये गये अध्ययन आन्तरिक इच्छाओं तक ही केन्द्रित रह जाते हैं। परन्तु वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करने में तथ्यों ाके उसी रूप में देखना महत्वपूर्ण है जिस रूपा में वे संसार को दिखायी देते हैं।

iii) विज्ञान व्यक्तियों का वर्णन नहीं करता। वह विषय–वस्तु के प्रकारों अथवा वर्गों का वर्णन करता है। यदि मानव समाजों का वर्गीकरण किया जाए तो यह व्यवहार के सामान्य नियमों तक पहुंचने तथा व्यवहार की नियमितता की खोज करने में हमारी सहायता कर सकता है।

iv) सामाजिक विज्ञान विभिन्न मानव समाजों का वर्गीकरण करता है। यह प्रत्येक प्रकार के समाज में सामाजिक जीवन की स्थिति का वर्णन करता है। इसका सीधा सा कारण यह है कि इस प्रकार सामाजिक विज्ञान में उसी सामाजिक प्रकार का ही वर्णन होता है, जो कुछ भी उस प्रकार विशेष से जुड़ा है तथा सभी के लिये समान रूप से लागू होता है, तथा जो कुछ भी सभी पर समान रूप से लागू होता है वह समाज के लिए स्वास्थ्यकर है।

v) विज्ञान का प्रयास समाज रूप से लागू होने वाले सिद्धांतों या नियमों को प्राप्त करना है। यदि समाजों में नियमितता नहीं पायी जाती तो किसी भी प्रकार के सामाजिक विज्ञान की सम्भावना नहीं रहती। दर्खाइम ने पुनः पायी जाती तो किसी भी प्रकार के सामाजिक विज्ञान की सम्भावना नहीं रहती। दर्खाइम ने पुनः इस ओर संकेत किया है कि यदि यह सिद्धांत कि सृष्टि की सभी घटनाएं परस्पर गहनता से सम्बद्ध है, प्रकृति के दूसरे क्षेत्रों के लिए सत्य सिद्ध हो चुका है, तो यह मानव समाजों के लिए भी सत्य है, जो प्रकृति का ही एक भाग है। इस विचार को आगे बढ़ाने में कि प्राकृतिक तथा सामाजिक जगत में एक निरन्तरता है, दर्खाइम का चिन्तन कॉम्ट के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित रहा है।

vi) यद्यपि प्राकृतिक व सामाजिक जगत के बीच एक निरन्तरता है परन्तु सामाजिक जगत, उतना ही विशिष्ट व स्वतंत्र विषय–वस्तु का क्षेत्र है, जितना कि भौतिक व

जीवविज्ञान का क्षेत्र।

दर्खाइम ने कुछ विद्वानों के इस मत का बहुत अधिक विरोध किया कि समाज की प्रत्येक घटना को मानवीय इच्छा की अभिव्यक्तियों तक सीमित कर देना चाहिये। उन्होंने स्पष्ट किया कि मानव इच्छा व उसकी अभिव्यक्तियों की श्रेणियां मनोविज्ञान के क्षेत्र में आती हैं न कि सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में। यदि सामाजिक विज्ञान को अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो समाजों को इस रूप में मानना होगा कि उनका एक निश्चित स्वरूप होता है जो उनका निर्माण करने वाले तत्वों की प्रकशति व व्यवस्था का परिणाम है।

vii) अन्त में, समाज की एकरूपताओं, प्रकारों तथा नियमों की विवेचना के लिए हमें एक पद्धति की आवश्यकता है। विज्ञान की जो पद्धतियां प्राकशतिक विज्ञानों के क्षेत्र में लागू होती हैं, वे सामाजिक क्षेत्र के लिए भी वैध हैं।

समाजविज्ञान का जो आधार दर्खाइम ने अपने प्रथम प्रकाशित कार्य में निश्चित किया था वह जीवन पर्यन्त समाजविज्ञान व उनके द्वारा कथित समाजशास्त्र के लक्षणों को सुनिश्चित करने का मूल आधार बना रहा। यह जाँचने के लिए कि उपरोक्त विचार बिंदू आपको पूरी तरह से समझ में आ गए हैं, सोचिए और करिए 1 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 1

नीचे दिये गये रेखा चित्र में विभिन्न प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों को सूचीबद्ध कीजिए जिनसे आप अवगत हों।

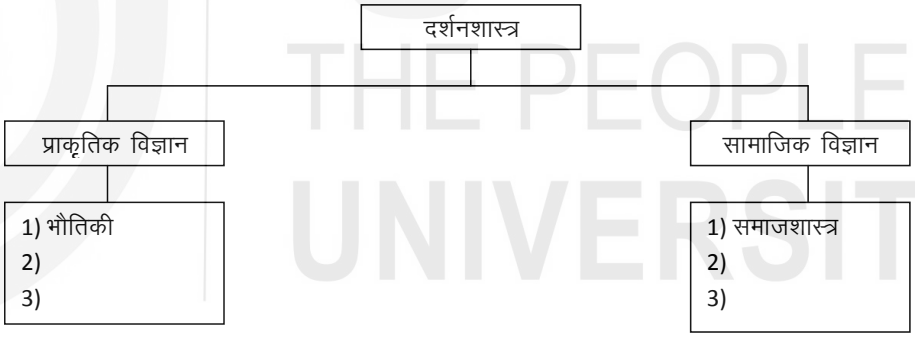

5.3 समाजशास्त्र ''सामाजिक तथ्यों'' के अध्ययन के रुप में

समाजशास्त्र की विषय वस्तु को निर्धारित करने में दो पहलू सम्मिलित हैं (अ) अध्ययन के सम्पूर्ण क्षेत्र को परिभाषित करना तथा (ब) उस प्रकार की वस्तु को परिभाषित करना जिसका इस क्षेत्र में अध्ययन किया जाएगा। दर्खाइम (1950:30) ने 1895 में प्रकाशित अपनी पुस्तक, *द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मैथड,* में सामाजिक तथ्यों को समाजशास्त्र की विषय वस्तु बताते हुए दूसरे पहलू को निष्पादित किया है। उन्होंने सामाजिक तथ्यों को ''कार्य करने, सोचने तथा अनुभव करने उन तरीकों'' के रूप में परिभाषित किया है। जो ''व्यक्ति के बाह्य हैं तथा एक दबावकारी शक्ति से युक्त हैं जिसके द्वारा वे व्यक्ति पर नियन्त्रण रखते हैं''।

दर्खाइम के लिए समाज एक ऐसी वास्तविकता है जो सूइ जेनेरिस (sui generis) है (इस शब्द का अर्थ शब्दावली में देखिए)। समाज व्यक्तियों के साहचर्य से बना है अतः समाज एक विशिष्ट वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करता है जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ होती

हैं। समाज की यह विशिष्ट वास्तविकता उन अन्य वास्तविकताओं से अलग है जिनका अध्ययन भौतिक तथा जीवविज्ञान में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक वास्तविकता व्यक्तियों से अलग है तथा उनके ऊपर है। अतः सामाजिक वास्तविकता को समाजशास्त्र की विषय वस्तु होना चाहिए। किसी भी सामाजिक घटना की वैज्ञानिक समझ सामाजिक संरचना में दिखायी देने वाली सामूहित अथवा सहयोगात्मक विशेषताओं से उत्पन्न होनी चाहिए। इस दिशा में कार्य करते हुए दर्खाइम ने विविध प्रकार की अवधारणाओं को विकसित किया तथा उनका उपयोग किया। ''सामूहित प्रतिनिधित्व'' उन अग्रणी धारणाओं में से एक है जो दर्खाइम के चिन्तन में पायी जाती है। ''सामूहिक प्रतिनिधित्व'' के बारे में जानने से पूर्व यह आवश्यक समाजशास्त्र विज्ञान के रूप में है कि आप यह समझ लें कि दर्खाइम के लिए ''सामाजिक तथ्यों'' का अर्थ क्या है।

5.3.1 सामाजिक तथ्य

दर्खाइम ने समाजशास्त्र की अपनी वैज्ञानिक दृष्टि को जिस मूलभूत सिद्धांत पर आधारित रख वह सामाजिक तथ्यों की वस्तुपरक वास्तविकता है। सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने व अनुभव करने का वह तरीका है जो किसी भी समाज में लगभग सामान्य रूप से पाया जाता है। दर्खाइम ने सामाजिक तथ्यों का वस्तुओं की भांति प्रयोग किया है। वे वास्तविक है तथा व्यक्ति की इच्छा या चाह से परे है। वे व्यक्तियों के अधिकार क्षेत्र से बाहर है तथा उन पर दबाव डालने में समर्थ है। दूसरे शब्दों में उनकी प्रकृति दबावकारी या नियंत्रणकारी है।

अतः समाजिक तथ्यों का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है। वे व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र है। सामाजिक तथ्यों की सही प्रकृति समाज में मौजूद सामूहिकता अथवा सहयोग की विशेषताओं में अंतर्निहित है। कानूनी संहिताएं तथा प्रथाएं, नैतिक नियम, धार्मिक विश्वास तथा रीतियां, भाषा आदि सभी सामाजिक तथ्यों की श्रेणी में आते है।

5.3.2 सामाजिक तथ्यों के प्रकार

दर्खाइम के दृष्टि में सामाजिक तथ्य एक सतत क्रम में होते हैं। उसके एक सिरे पर संरचनात्मक अथवा स्वरूप संबंधी सामाजिक घटनांए होती है। ये सामाजिक जीवन के आधार को बनाती है। यहां उसका तात्पर्य समाज का निर्माण करने वाले मूलभूत भागों की प्रकृति व संख्या, वे जिस क्रम में व्यस्थित हैं तथा उनके संयोजन के परिणाम से है। इस श्रेणी के सामाजिक तथ्यों में भौगोलिक क्षेत्रों में जनसंख्या का वितरण, आवासों की रचना, संचार–व्यवस्था की प्रकृति आदि सम्मिलित है।

फिर, सामाजिक तथ्यों के संस्थागत स्वरूप आते है। यह समाज में लगभग सामान्य तथा विस्तृत रूप से व्याप्त रहते है। ये संपूर्ण समाज की सामूहिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते है। इस श्रेणी में समाज में विद्यमान कानूनी तथा नैतिक नियम, धार्मिक मत तथा विश्वास व प्रथांए सम्मिलित है।

उसके बाद, वे सामाजिक तथ्य है जो संस्थागत नहीं हो पाये है। इस प्रकार के सामाजिक तथ्यों का एक स्पष्ट रूप नहीं बन पाया है। वे समाज के संस्थागत आदर्शों से परे स्थित है, साथ ही इस प्रकार के सामाजिक तथ्यों ने संस्थागत सामाजिक तथ्यों की तुलना में अभी तक पूर्णतया वस्तुपरक व स्वतंत्र अस्तित्व नहीं प्राप्त किया है।

इसके अतिरिक्त व्यक्तियों पर उनकी बह्यता तथा उन पर बाध्यता अभी पूर्ण रूप से

नहीं है। इस प्रकार के सामजिक तथ्यों को ''सामाजिक प्रवाह'' (social currents) कहा गया है। उदाहरण के लिए विशिष्ट स्थितियों में उत्पन्न मतों का यत्र–तत्र प्रवाह, साहित्य में उपजी विचारधारांए (नई कविता), भीड़ में उत्पन्न उन्माद, लोगों की भीड़ में क्षणिक क्रोध, विशिष्ट घटनाओं द्वारा तिरस्कार या करूणा की भावना का उपजना, आदि।

उपरोक्त सभी सामाजिक तथ्य एक सतत क्रम (continuum) बनाते हैं तथा समाज के सामाजिक परिवेश को संगठित करते है।

इसके अतिरिक्त दर्खाइम ने सामान्य तथा व्याधिकीय (pathological) प्रकार के सामाजिक तथ्यों में अंतर किया है। एक सामाजिक तथ्य उस दशा में सामान्य है जब वह उद्विकास की किसी निश्चित अवस्था में किसी निश्चित प्रकार के समाज में सामान्य रूप से मिल जाता है। इससे विचलित तथ्य व्याधिकीय है। उदाहरण के लिए किसी भी सामाज में अपराध की कुछ मात्रा होना आवश्यक है। अतः दर्खाइम के अनुसार उस सीमा तक अपराध एक सामान्य सामाजिक तथ्य है (जैसे 'आटे में नमक के बराबर' कहावत में)। जबकि अपराध की दर मं असामान्य वषद्धि होना व्याधिकीय सामाजिक तथ्य है। अपराध की नैतिक भर्त्सना मं कमी होना तथा विशिष्ट प्रकार के आर्थिक संकट जो समाज को अराजकता की ओर ले जाते है, व्याधिकीय सामाजिक तथ्यों के अन्य उदाहरण हैं।

5.3.3 सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएं

दर्खाइम के मत एक वस्तुपरक विज्ञान के रूप में सामाजशास्त्र को दूसरे विज्ञानों के प्रारूप के अनुरूप चलना चाहियें। ऐसा करने के लिए दो बातों का होना आवश्यक है। प्रथम, समाजशास्त्र का ''विषय'' निश्चित होना चाहिये तथा इसको सभी दूसरे विज्ञानों से अलग किया जाना चाहिये। द्वितीय, समाजशास्त्र का ''विषय'' ऐसा होना चाहिये जिसका अवलोकन व व्याख्या की जाती है। दर्खाइम की दृष्टि मं समाजशास्त्र का ''विषय'', सामाजिक तथ्य हैं तथा इन सामाजिक तथ्यों को ''वस्तु'' की भांति समझना चाहिये।

सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषताएं हैः (i) बाह्यता (exteruality), (ii) बाध्यता (constraint), (iii) स्वतंत्रता (independance) तथा (iv) सामान्यता (generality)।

दर्खाइम के अनुसार सामाजिक तथ्यों का अस्तित्व व्यक्तिगत चेतना के बाहर होता है। उनका अस्तित्व व्यक्तियों के परे होता है। उदाहरण के लिए कानून व प्रथाओं में पारिवारिक अथवा नागरिक या संविदात्मक दायित्वों (contractual obligations) की परिभाषा व्यक्तियों से बाह्य होती है। धार्मिक विश्वास व व्यवहार व्यक्ति से परे व पहले से ही विद्यमान होते है। व्यक्ति समाज में जन्म लेता है और उसे छोड़ जाता है जबकि सामाजिक तथ्य समाज में पहले से ही विद्यमान रहते है। उदाहरणार्थ, भाषा किसी भी व्यक्ति पर निर्भर न रहते हुए स्वतंत्र रूप से कार्यरत है।

सामाजिक तथ्यों की एक अन्य विशेषता यह है कि ये व्यक्ति के ऊपर एक दबाव डालते है। सामाजिक तथ्यों की मान्यता का कारण है। कि ये स्वयं को व्यक्ति पर अधिरोपित करते है। उदाहरण के लिए, कानून शिक्षा, विश्वास आदि प्रत्येक व्यक्ति से पहले ही स्थापित रहते है। वे सभी के लिए प्रभावशाली व दायित्वपूर्ण होते है। जब एक भीड़ में कोइ अनुभव या सोच को अधिरोपित किया जाता है तो यह विवशता या एक प्रकार की

बाध्यता का उदाहरण है। इस प्रकार की घटना सिद्धांत रूप से सामाजिक है क्योंकि इसका आधार तथा विषय पूरा समूह है न कि कोई व्यक्ति विशेष।

सामाजिक तथ्य वह है जो समाज में लगभग सामान्य रूप से घटित होता है। साथ ही मानव प्रकृति के सार्वभौमिक गुणों व व्यक्तियों के वयक्तिगत गुणों से सीमित न होने के अर्थ में स्वतंत्र है। इसके उदाहरण किसी समूह द्वारा सामूहिक रूप से किये गये कार्य, अनुभव तथा विश्वास है।

संक्षेप में सामाजिक तथ्य विशिष्ट होते है। उनका जन्म व्यक्तियों के पारस्परिक साहचर्य से होता है। सामाजिक तथ्य सामाजिक समूह अथवा समाज के सामूहिक प्रकरणों का प्रतिनिधित्व करते है। ये व्यक्तिगत चेतना से उत्पन्न तथ्यों से गुणों में भिन्न होते है। सामाजिक तथ्यों को वर्गीकृत व श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक तथ्य समाज के विज्ञान (समाजशास्त्र) की विषय–वस्तु है। सामाजिक तथ्यों की इस प्रकृति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक तथ्यों में सामान्यता पाई जाती है अर्थात् सभी समाजों में ऐसे सामाजिक तथ्य होते है जिन्हें वर्गीकृत तथा श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

निम्न कथन आपके द्वारा अभी तक प्राप्त जानकारी पर आधारित है। उपयुक्त शब्दों द्वारा खाली स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) समाज व्यक्तियों का योग मात्र ..... है। यह व्यक्तियों के ..... द्वारा निर्मित व्यवस्था है।

ii) समाज एक ऐसी वास्तविकता है जो ..... है।

iii) समाज में कानूनी संहिताएं, प्रथांए, नैतिक नियम, धार्मिक विश्वास तथा सोचने, अनुभव करने व कार्य करने के तरीके, आदि होते है, दर्खाइम ने इन्हें .... कहा है।

iv) दर्खाइम ने सामाजिक तथ्यों को ..... की भांति माना है।

v) सामाजिक तथ्या व्यक्तियों की इच्छा या चाह से ..... होते है।

vi) सामाजिक तथ्य व्यक्तियों से ..... होते हैं। वे उन पर ..... डालने होते है।

vii) समाज में सामान्य सामाजिक तथ्य होते है। साथ ही समाज में ..... तथ्य भी होते है।

5.3.4 बाह्यता एवं बाध्यता

यहाँ सामाजिक तथ्यों की दो विशेषताओं अर्थात् बाह्यता व बाध्यता के आधारों की कुछ विस्तार से विवेचना की जायेगी।

(अ) बाह्यताः सामाजिक तथ्य दो अर्थों में व्यक्ति से बाह्य होते है।

(i) प्रथम, प्रत्येक व्यक्ति ऐसे अविरल समाज में जन्म लेता है जिसका पहले से ही एक निश्चित संगठन या संरचना होती है। समाज में मूल्य, आदर्श, विश्वास व व्यवहार

आदि व्यक्तियों के जन्म से पूर्व ही विद्यमान होते है तथा इन्हें व्यक्ति समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखते है क्योंकि ये सामाजिक घटनांए व्यक्ति से पूर्व ही विद्यमान रहती है तथा ये वस्तुपरक वास्तविकताएं है अतः ये व्यक्ति से बाह्य है।

(ii) द्वितीय, सामाजिक तथ्य व्यक्ति से इस अर्थ में बाह्य है कि कोई एक व्यक्ति समाज का निर्माण करने वाले संबंधों की सम्पूर्णता में केवल एक तत्व मात्र होता है।

ये संबंध किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं बनाये जाते अपितु व्यक्तियों के मध्य होने वाली विभिन्न अन्तः क्रियाओं द्वारा नियत होते हैं। व्यक्तियों तथा उनके द्वारा संगठित समाज के मध्य संबंध को समझने के लिए दर्खाइम ने रासायनिक तत्वों व उनसे निर्मित पदार्थों के मध्य संबंध का समानान्तर उदाहरण लिया है। दर्खाइम (1950: X) के अनुसार ''जब भी किन्हीं तत्वों के संयोग से कोई नया पदार्थ बनता है तो इस पदार्थ की प्रकृति इसके सम्पूर्ण स्वरूप की प्रकृति होती है तथा इसके निर्माणकारी तत्वों की प्रकृति (गुणों) से भिन्न होती है''।

एक जीवित कोशिका में खनिज लवण होते है परन्तु हाइड्रोजन, ऑक्सीजन जैसे भागों की अपेक्षा जीवन का गुण अधिक महत्वपूर्ण है। भागों संचयन मात्र की अपेक्षा सम्पूर्णता अधिक महत्वपूर्ण है। सम्पूर्णता (समाज) की अभिव्यक्ति इसके व्यक्तियों की अभिव्यक्तियों से भिन्न होती है। आपने नित्य–प्रति के जीवन में देखा होगा कि व्यक्तियों व समूह में अंतर होता है। (विशेष रूप से उस समय जब समूह द्वारा मांगे उठायी जाती है)। व्यक्तिगत रूप से किसी बात पर समूह के सदस्य सहमत हो सकते है परन्तु सामूहिक रूप से वे सहमत नहीं होते है। विस्तष्त समाज में व्यवहार के कुछ नियम पाए जाते है जो उस समाज में विशिष्ट रूप में पाये जाते है जिसमें वे निर्मित हुए हैं न कि उसका (समाज का) निर्माण करने वाले भागों अर्थात् उसके सदस्यों में (दर्खाइम 1950)। इस आधार को आगे बढ़ाकर दर्खाइम ने यह दिखाना चाहा है कि सामाजिक तथ्य व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक तथ्यों से भिन्न होते है। अतः इनका अध्ययन मनोविज्ञान से पृथक एक अलग विषय के रूप में करना चाहियें और यह विषय समाजशास्त्र है।

(ब) बाध्यता: द्वितीय आधार, जिसके द्वारा सामाजिक तथ्यों को परिभाषित किया जाता है, वह नैतिक बाध्यता है जो सामाजिक तथ्य व्यक्ति पर डालते है। जब व्यक्ति सामाजिक तथ्यों का प्रतिरोध करने का प्रयास करते है तो वे (सामाजिक तथ्य) स्वयं को स्थापित करते है। यह आग्रह (दबाव के रूप में) हल्के उपहास से लेकर सामाजिक बहिष्कार तथा नैतिक व कानूनी प्रतिबंध तक हो सकता है। यद्यपि अधिकतर परिस्थितियों में व्यक्ति सामाजिक तथ्यों के अनुरूप ही चलते है तथा इस कारण से उनके बाध्यकारी प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप से महसूस नहीं करते है। यह अनुसरण व्यावहारिक प्रतिबंधों के भय के कारण उतना नहीं है जितना कि सामाजिक तथ्यों की वैधता को मानने के कारण है (देखिए, गिड्न्स 1971:88)।

दर्खाइम (1950:4) के अनुसार ''सामाजिक'' को बाध्यता तथा नियंत्रण के अर्थ में परिभाषित करना ''निरंकुश व्यक्तिवाद के उत्साही अंध समर्थकों के अनुचित जोखिम लेने की भांति है। यद्यपि आजकल यह सामान्य रूप से माना जाता है कि हमारे अधिकतर विचार तथा प्रवृत्तियां स्वयं हमारे द्वारा विकसित नहीं होती है बल्कि बाहर से हम तक आती है। अतः वे हमारा भाग कैसे बन सकती है। सिवाय इसके कि वे स्वयं को हम पर अधिरोपित करें। ''दर्खाइम ने अपने विचारों को उस समय प्रचलित उपयोगितावादी दषष्टिकोण का खण्डन करने के लिए प्रतिपादित किया था। इस

दृष्टिकोण के अनुसार समाज को संबद्ध रखा जा सकता है तथा सबसे अधिक सुख उस समय प्राप्त होगा जब प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए कार्य करेगा। दर्खाइम ने इस दृष्टिकोण को सहमति नहीं दी। उसके अनुसार व्यक्ति के हित व समाज के हितों में परस्पर मेल नहीं है। सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि समाज अपने सदस्यों पर कुछ नियंत्रण या दबाव बनाये रखे।

सामाजिक तथ्यो के दबावकारी प्रभावों को सुनिश्चित करने के लिए दर्खाइम (1950:6) ने शिक्षा के प्रयासों को ''बालक तथा बालिकाओं पर ऐसे कार्य करने, देखने व अनुभव करने के तरीके का अधिरोपण करने के रूप में देखा है। जिन्हें कि वे (बालक–बालिकाएं) स्वयं प्राप्त नहीं कर सकते ..... शिक्षा का उद्देश्य, संक्षेप में, मानव का समाजीकरण है। इस प्रक्रिया में माता–पिता तथा शिक्षक उस सामाजिक परिवेश के प्रतिनिधि व अभिप्रेरक मात्र हैं जो उसकी अपनी छवि के अनुरूप ढालने के लिए विवश है।

दर्खाइम (1950:7) ने आगे कहा है कि सामाजिक तथ्यों को उनकी सार्वभौमिकता मात्र द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता। कोई विचार या किया इस कारण सामाजिक तथ्य नहीं है। क्योंकि वह सभी व्यक्तियों द्वारा दोहरायी गयी है। इस संबंध में समूह के विश्वासों, प्रवर्षत्तियों, तथा व्यवहारों का संस्थागत या सामूहिक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है जो सामाजिक घटना के लक्षणों को सही प्रकार से वर्णित करता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण इय है कि इन घटनाओं का हस्तांतरण समाजीकरण के सामूहिक साधनों के माध्यम से किया जाता है।

अतः सामाजिक तथ्य इसलिए भी मान्य हो सकते है कि एक ओर तो वे व्यक्तियों से बाह्य है तथा दूसरी ओर वे उन पर दबाव डालने में भी समर्थ होते है। वे व्यक्ति से बाह्य है, वे सामान्य भी है तथा वे सामूहिक भी है। अतः उन्हें समाज में रहने वाले व्यक्तियों पर अधिरोपित भी किया जा सकता है।

सामाजिक तथ्यों पर विस्तार में चर्चा के बाद, आइए, पहले सोचिये और करिये 2 को पूरा करे और फिर समाजशास्त्रीय पद्धति पर दर्खाइम के विचारों को समझें।

सोचिए और करिए 2

कुछ ऐसे सामाजिक तथ्यों का उदाहरण दीजिए जो व्यक्ति से बाह्य हों तथा जिनकी बाह्यता व नियंत्रण के अर्थ में परिभाषा दी जा सकें? उनके विषय में व्यक्ति कैसे जानता है? इन प्रश्नों पर एक पृष्ठ की टिप्पणी लिखिए तथा इसकी तुलना अपने अध्ययन केन्द्र के अन्य विद्यार्थियों की टिप्पणियों से कीजिए।

5.4 समाजशास्त्रीय पद्धति

समाजशास्त्र की विषय–वस्तु को परिभाषित करने के पश्चात दर्खाइम ने समाजशास्त्र के अध्ययन की पद्धति का वर्णन किया है। उसकी समाजशास्त्रीय पद्धति रूप से जीवविज्ञान के अनुभव पर टिकी हुई है जिसका उस समय तक जीवित वस्तुओं के विज्ञान के रूप में उदय हो चुका था।

5.4.1 सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम

दर्खाइम (1950:14) ने हमें इस संबंध में पहला नियम यह दिया कि सामाजिक तथ्यों को

वस्तुओं की भांति माना जाए। सामाजिक तथ्य वास्तविक है परन्तु वस्तुओं की तरह ठोस वास्तविकताओं के रूप में इन पर सीधे ध्यान देने व अध्ययन करने के स्थान पर अन्य लेखकों ने इन्हें कल्पना या भावों की अभिव्यक्ति के रूप में देखा है। एक विषय के रूप में उदय होने तक यह सभी विज्ञानों के लिए सत्य है–विज्ञान से पहले चिन्तन तथा अनुचिंतन होते है। विज्ञान से पूर्व की अवस्था को केवल अवधारणात्मक वाद–विवाद द्वारा नहीं तोड़ा जा सकता अपितु अनुभव–सिद्ध अध्ययनों द्वारा इस कार्य को किया जा सकता है। सामाजिक विज्ञानों के लिए शायद यह प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में और भी अधिक महत्वूपर्ण है क्योंकि इनमें सामाजिक तथ्यों को कुछ इस प्रकार देखने की प्रवृत्ति रही है। जैसे वे वास्तविक तथ्य ही न हों (व्यक्तिगत इच्छा से निर्मित रचनाएं) या इसके विपरीत पहले ही पूर्ण रूप से परिचित शब्द हो जैसे ''लोकतंत्र'', ''समाजवाद'' आदि जिन शब्दों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से किया जाता है, मानो कि वे एकदम उसी रूप में ज्ञात तथ्यों को व्यक्त करते है, जबकि वास्तव में ''वे हमारे भीतर भ्रांतिपूर्ण विचारों, अस्पष्ट धारणाओं, पूर्वाग्रहों व भावनाओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जागृत करते'' (दर्खाइम 1950:22)। दर्खाइम ने कहा कि इन प्रवृत्तियों का सामना करने के लिए सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की भांति समझना चाहिये। उनका अध्ययन सहज अंतदृष्टियों से नहीं, अनुभव–सिद्ध पद्धति से करना चाहिये। न ही साधारण ऐच्छिक प्रयासों से सामाजिक तथ्यों को बदला जा सकता है।

सामाजिक तथ्यों का वस्तुओं की भांति अध्ययन करते समय वस्तुपरकता बनाये रखने के लिए तीन नियमों का पालन करना चाहिये।

i) सभी पूर्व धारणाओं को दूर किया जाना चाहिये। समाजशास्त्री को साधारण मनुष्यों के मस्तिष्क पर प्रभाव करने वाले साधारण स्तर के विचारों से स्वयं को मुक्त रखना चाहिये तथा उसे अपने अध्ययन के विषय के प्रति भावनात्मक रूप से निष्पक्ष रूप अपनाना चाहिये।

ii) समाजशास्त्री को अवधारणाओं का नियमन एकदम सही ढंग से करना चाहिये। शोध के प्रारंभ में समाजशास्त्री को विवेचित की जा रही घटनाके विषय में बहुत कम ज्ञान होता है अतः उसे अपनी विषय–वस्तु को पर्याप्त रूप से बाह्य दिखने वाले गुणों के रूप में सुत्रबद्ध करते हुए आगे बढ़ना चाहिये। अतः श्रम–विभाजन के अध्ययन में किसी समाज में एकता के प्रकार को यह देखकर समझा जा सकता है कि इस समाज में किस प्रकार का कानून, दमनकारी या क्षतिपूर्तिकारी, फौजदारी या दीवान प्रभावशाली है। इसकी चर्चा इकाई 11 एवं 13 में की गयी है।

iii) जब समाजशास्त्री किन्हीं सामाजिक तथ्यों की जांच का उत्तरदायित्व ले तो उसे उन्हें अपनी अभिव्यक्तियों से पृथक करके देखने का प्रयास करना चाहिये। सामाजिक तथ्यों की वस्तुपरकता मुख्यतः उनकी विवेचना करने वाले व्यक्तियों से उन्हें अलग किये जाने पर निर्भर करती है। वे समाज के सदस्यों के लिए एक समाज मानक प्रदान करते है। वे कानूनी नियमों, नैतिक नियंत्रकों, कहावतों, सामाजिक सम्मलेनों आदि के रूप में विद्यमान होते है। सामाजिक जीवन के बारे में जानने के लिए समाजशास्त्री को इनका अध्ययन करना चाहिये।

सामाजिक तथ्यों को ''धारणा के प्रवाहों'' में भी देखा जा सकता है। ये धारणाएं स्थान व काल के अनुरूप बदलती रहती है उदाहरण के लिए कुछ निश्चित समूहों को या तो अधिक विवाह करने हेतु या अधिक आत्महत्याओं के लिए अथवा अधिक या कम जन्म

दर के लिए प्रोत्साहित करती हैं। ये प्रवाह स्पष्ट रूप से सामाजिक तथ्य है। पहली दृष्टि में ये प्रवाह उन स्वरूपों से अभिन्न दिखायी देते है जिनमें ये व्यक्तिगत व्यवहार के रूप में मिलते है। परन्तु सांख्यिकी हमें इन्हें पृथक करने का साधन उपलब्ध कराती है। वास्तव में जन्म, विवाह तथा आत्महत्या आदि की दरों में उनका यथार्थता के साथ सामूहिक प्रतिनिधित्व होता है..... ''(दर्खाइम 1950:7)।

सामाजिक प्रवाह सैद्धांतिक परिवृत्य (variables) है जबकि सांख्यिकी दरें इन परिवृत्यों से संबंधित प्रस्थापनाओं की पृष्टि के लिए प्राप्त किये जाने वाले साधन है। यह मानते हुए कि इन सामाजिक प्रवाहों का प्रेक्षण नहीं किया जा सकता, दर्खाइम ने इस बात पर बल दिया है कि ''पद्धति के साधनों'' का इस प्रकार से प्रयोग करना चाहिये कि अनुभव सिद्ध पुष्टि की जा सके। यहां यह नोट किया जाना चाहिये कि ''आत्महत्या की दरों'' का प्रकरण दर्खाइम द्वारा उस तीरके के सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में दिया गया जिससे सामाजिक तथ्यों का अध्ययन किया जा सकता है।

5.4.2 सामान्य एवं व्याधिकीय में विभेद के नियम

सामाजिक तथ्यों का अवलोकन करने के नियम बताने के पश्चात दर्खाइम ने 'सामान्य तथा ''व्याधिकीय'' सामाजिक तथ्यों में अन्तर किया है। दर्खाइम ने इसको इसीलिए महत्वपूर्ण माना है जैसे कि उसने बताया है, मनुष्यों का वैज्ञानिक अध्ययन बहुत कुछ इस कारण से पीछे रह गया क्योंकि बहुत से मनीषियों में अपने से भिन्न व्यवहार को ''व्याधिकीय'' स्परूप में देखने की प्रवृति की। परन्तु दर्खाइम (1950:64) ने यह स्पष्ट किया की एक सामाजिक तथ्य किसी सामाजिक प्रारूप के सन्दर्भ में इसके विकास की दी हुई एक अवस्था में सामान्य है। जब यह उस प्रजाति के औसत समाज में इसके उद्विकास की उपयुक्त अवस्था में पाया जाता है। उन्होंने आगे बताया है कि एक सामाजिक तथ्य किसी समाज के लिए केवल उसी दशा में ''सामान्य'' होता है जब तक वह उस सामाजिक प्ररूप के लिए उपयोगी है।

इसके उदाहरण के रूप में उसने अपराध का उल्लेख किया है। अपराध व्याधिकीय तथ्य माने जाते है। परन्तु दर्खाइम का तर्क है कि, यद्यपि अपराध को अनैतिक माना जा सकता है क्योंकि यह प्रचिलित मूल्यों की अवहेलना करता है, वैज्ञानिक दृष्टि से इसे असामान्य कहना उचित नहीं होगा। पहले तो अपराध न केवल एक विशिष्ट प्रकार के समाजों में अधिकतर पाया जाता है अपितु सभी प्रकार के समाजों में पाया जाता है। दूसरा यदि आदर्शों में नियमित विचलन अथवा उनकी अवहेलना नहीं होगी तो मानव व्यवहार में कोई परिवर्तन कहां होगा। साथ ही इस बात की कोई संभावनाएं नहीं रह जाएंगी कि समाज अपने वर्तमान आदर्शों की पुनः पुष्टि कर सके अथवा इस प्रकार के व्यवहार का पुनर्मुल्यांकन करके स्वयं ही आदर्श को परिवर्तित कर सके। यह प्रदर्शित करने के लिए कि अपराध नैतिकता व कानून के सामान्य उद्विकास के लिए उपयोगी है, दर्खाइम ने सुकरात का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जो अपने विचारों की स्वंतत्रता के कारण एथेनियन कानून की दृष्टि में अपराधी था। परन्तु इस अपराध से उसने अपने समाज की महान सेवा की। क्योंकि इससे एक नयी नैतिकता व विश्वास का संचार हुआ जिसकी उस समय एथेन्सवासियों को आवश्यकता थी। इससे इस अर्थ में मानवता की भी सेवा हुई क्योंकि आज अनेक समाजों में लोगों द्वारा उपभोग की जा रही विचारों की स्वतंत्रता उस जैसे व्यक्तियों के प्रयासों से ही संभव हो सकी।

दर्खाइम उन तरीकों से प्रभावित थे जिनके प्रयोग से चिकित्सा का अध्ययन वैज्ञानिक हो

गया था। चिकित्सक शरीर की सामान्य कार्य–विधि तथा इसके व्याधिकीय लक्षणों दोनों का ही अध्ययन करते हैं। इन दोनों लक्षणों का अध्ययन शरीर की प्रकृति को पहचानने में सहायक होता है। उसने इस पद्धति को सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में प्रयोग किया। समाज में श्रम विभाजन के अपने अध्ययन में उसे प्रथम दो भागों में सामान्य लक्षणों की व्याख्या तथा तीसरे भाग में असामान्य लक्षणों की व्याख्या की है। उन्होंने अपराध तथा दण्ड दोनों को कुछ सीमा तक सामान्य ही माना है।

एक सामाजिक तथ्य किस प्रकार से समान रूप से विद्यमान होता है? अधिकतर अपराध की दर एक समाज में लगभग स्थिर रहती है। लेकिन जब यह दर अप्रत्याशित रूप से बढ़ती है। तो इसे असामान्य या व्याधिकीय सामाजिक तथ्य कहते है। इसी प्रकार, इस आधार का प्रयोग करते हुए आत्महत्या एक सामान्य तथ्य है (यद्यपि इसको ''गलत'' या ''अनैतिक'' माना जाता है क्योंकि यह उन मूल्यों तथा प्रतिमानों के विरूद्ध है जो जीवन के सरंक्षण को श्रेष्ठ बनाते है)। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में आत्महत्या की दर में अप्रत्याशित वृद्धि उन कारणों में से एक थी जिनके कारण दर्खाइम ने इस घटना का अध्ययन करने का निर्णय लिया।

5.4.3 सामाजिक प्ररूप के वर्गीकरण के नियम

विद्वानों में सामूहिक जीवन की विभिन्न अवधारणाएं रही है। कुछ इतिहासविदों का मत है कि प्रत्येक समाज विशिष्ट है तथा इस कारण हमारे द्वारा समाजों की तुलना नहीं की जा सकती। दूसरी ओर दार्शनिक यह मानते है कि सभी समाजों की एक ही प्रजाति, मानव प्रजाति, है तथा मानव प्रकृति के समान लक्षणों के कारण ही सभी सामाजिक उद्विकास प्रस्फुटित हुए है।

इस संबंध में दर्खाइम की स्थिति मध्य में है। उसने सामाजिक प्रजातियों या सामाजिक प्ररूपों का उललेख किया है। यद्यपि सामाजिक तथ्यों में बहुत अधिक भिन्नता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें वैज्ञानिक तरीके से वर्णित नहीं किया जा सकता अर्थात् तुलना, वर्गीकरण व व्याख्या ही नहीं की जा सकती हो। यदि दूसरी ओर सिर्फ एक प्रजाति की बात की जाती है तो महत्वपूर्ण गुणात्मक भिन्नतांए हमारे द्वारा छोड़ दी जायेंगी और उन्हें एक साथ समझना असंभव होगा।

समाजों का उनके प्ररूपों में वर्गीकरण करना उनकी व्याख्या करने की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है क्योंकि प्रत्येक (सामाजिक) प्ररूप की समस्यांए व व्याख्याएं भिन्न होगी। यह निर्णय लेने की भी आवश्यकता है कि एक सामाजिक तथ्य समान है या असमान होता है। दर्खाइम ने सामाजिक प्रारूपों के वर्गीकरण के लिए ''सामाजिक आकारिकी'' (social morphology) शब्द का प्रयोग किया है। प्रश्न यह है कि सामाजिक प्रारूप किस तरह से बनते हैं? यहां ''प्ररूप'' शब्द का अर्थ एक समूह में विभिन्न इकाईयों की समान विशेषताओं से है। उदाहरण के लिए ''कुंवारे तथा ''विवाहित व्यक्ति'' दो प्रकारों के अन्तर्गत आते हैं तथा दर्खाइम ने अपने समाज शास्त्रीय शोध से सफलता पूर्वक यह प्रदर्शित किया है कि ''कुवांरो'' में आत्महत्या की दर अधिक थी। कृपया इसे व्यक्तिगत घटनाओं से भ्रमित न करें।

हमें पहले प्रत्येक विशिष्ट समाज का पूर्णरूपेण अध्ययन करना चाहिये और तभी इनकी समानताएं व विभिन्नताएं देखने के लिए तुलना करनी चाहिये। तद्नुसार, हमारे द्वारा उनका वर्गीकरण किया जा सकता है, दर्खाइम (1950:78) का कहना था कि विज्ञान का

यह नियम नहीं कि विशिष्ट का अवलोकन करने के पश्चात् ही समानता पर पहुंचना चाहिये और वह भी उसको समग्रता में देखने के पश्चात्? यह जानने के क्रम में, कि क्या एक तथ्य सम्पूर्ण प्रजाति या सामाजिक प्ररूप के लिए समान है अथवा नहीं, यह आवश्यक नहीं कि हम इस प्रकार के सभी समाजों का अवलोकन करें, केवल स्वयं का अवलोकन ही पर्याप्त होगा। दर्खाइम (1950:80) के अनुसार ''अनेको प्रकरणों ने एक सही प्रकार से किया गया अवलोकन भी पर्याप्त होगा, जैसा कि कानून की स्थापना के लिए सही प्रकार से निर्मित प्रयोग (अध्ययन) पर्याप्त होता है।'' दर्खाइम होर्ड (horde) की भांति ''एक खण्डनीय समाज'' अथवा ''पूर्णतः सरल समाज'' जैसा होर्ड (horde) को आधार के रूप में लेकर समाजों का वर्गीकरण उनके संगठन के स्तर के अनुसार करना चाहते थे। होर्ड्स के संयोग से निर्मित होने वाले समाज को ''सरल बहुखण्डनीय'' (simple polysegmental) कहा जा सकता है। इनके संयोग से ''सरलीकृत संयुक्तागी बहुखण्डनीय समाजों'' (polysegmental societies simply compounded) का निर्माण होता है। इस प्रकार के समाजों के संयोग से और अधिक जटिल समाज उत्पन्न होते हैं। जिन्हें ''युग्मित्त संयुक्तागी बहुखण्डनीय समाज'' (polysegmental societies doubly compounded) कहा जाता है तथा इसी प्रकार आगे अन्य समाजो का निर्माण हो सकता है।

इन प्रारूपों के अन्तर्गत विभिन्न उपभेद भी किये जा सकते हैं जिसका आधार यह होगा कि इन प्रारंभिक खण्डों का विलयन पूर्ण रूप से हुआ अथवा नहीं।

समाजों की सामाजिक प्रजातियां अथवा प्रारूपों का वर्गीकरण करने के लिए दर्खाइम द्वारा प्रयुक्त कार्य–प्रणाली के सम्बन्ध में जॉन रेक्स (1961) ने जांच की है कि यह जीव–विज्ञानीय उपागम किस सीमा तक समाजशास्त्रीय शोध में उपयोगी है। रेक्स ने ऐसे प्रकरणों का खोज निकाला जहां यह उपयोगी हो सकता है तथा वे प्रकरण जहां इसका प्रयोग कठिन है। पहले प्रकार के प्रकरणों में वर्णन, वर्गीकरण तथा औसत (सामाजिक) प्ररूप के निर्माण संबंधी प्रयोग आते हैं। कठिनाई उस समय होती है जब समाजों का इतिहास अध्ययन की विषय–वस्तु बन जाता है, इस प्रकार के प्रकरणों में प्रजातियों की खोज लेखक द्वारा ऐतिहासिक प्रक्रिया से बाहर जाकर कर ली जाती है तथा उद्विकास का सिद्धान्त (समाजशास्त्र के लिए) अधिक उपयोगी नहीं है (देखिए रेक्स 1961:14)।

5.4.4 सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम

सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए दो प्रकार के उपागमों का प्रयोग किया जा सकता है : कारणात्मक तथा प्रकार्यात्मक।

कारणात्मक का संबंध यह व्याख्या करने से है कि अध्ययन की जाने वाली घटना ''क्यों'' घटित होती है। दूसरे का संबंध यह स्थापित करने से है कि अध्ययन किये जा रहे तथ्य की सामाजिक प्रणाली की सामान्य आवश्यकताओं के लिए क्या उपयोगिता है (दर्खाइम 1950:95)। किसी सामाजिक तथ्यों को जन्म देने वाले प्रकरणों की पहचान अलग से की जानी चाहिये। चाहें उसका सामाजिक प्रकार्य कुछ भी हो। सामान्य रूप से, प्रकार्यों का निर्धाण करने से पूर्ण कार्यों को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। यह इस लिए क्योंकि ऐसे कारणों की जानकारी, जो किसी घटना के घटित होने के लिए उत्तरदायी है, किन्हीं विशेष परिस्थतियों में उसके सम्भावित प्रकार्यों के बारे में हमें कुछ अर्न्तदृष्टियां प्रदान कर सकती है। यद्यपि ''कारण'' तथा ''प्रकार्य'' दो अलग–अलग विशेषताएं है परन्तु

दोनों के मध्य एक अनुपूरक संबंध होने से रोका नहीं जा सकता तथा इन्हें किसी भी ओर से देखा जा सकता है वास्तव में, दर्खाइम श्रम–विभाजन के अपने अध्ययन के प्रथम भाग में प्रकार्यों से प्रारम्भ करके तथा इसके द्वितीय भाग में कारणों पर आने में एक अर्थ देखता है। एक अध्ययन से ''दण्ड'' के उदाहरण को हमारे द्वारा लिया जा सकता हैः अपराध समाज की सामूहिक भावनाओं पर आघात करता है। जब कि दण्ड का प्रकार्य भावनाओं को प्रखरता के उस स्तर तक बनाये रखना होता है। यदि भावनाओं के विरूद्ध किये जाने वाले अपराध को दण्डित नहीं किया जाये तो सामाजिक स्थरता को बनाये रखने के लिए आवश्यक भावनाओं की दृढ़ता को पहले की तरह नहीं रखा जा सकता। (यहां यह बताया जा सकता है कि समाजशास्त्र में विशेष रूप से अमेरिका में 1940 व 1950 के दशकों में ''प्रकार्यवाद'' के प्रभावशाली रहने का कारण दर्खाइम की ''प्रकार्य'' की अवधारणा रही है। इसकी चर्चा हमने इन पाठयक्रम के अन्तिम दो खंडों (6 तथा 7) में की है।)

प्रकार्यात्मकः सामाजिक तथ्यों व्याख्या में प्रयोग किये जाने वाले दो उपागमों में अंतर करने के पश्चात दर्खाइम का अगला कार्य उस पद्धति का निर्धारण करना था जिसके द्वारा सामाजिक तथ्यों को विकसित किया जा सके। सामाजिक तथ्यों की प्रकृति ही इन तथ्यों की व्याख्या करने वाली पद्धति को निर्धारित करती है। क्योंकि समाजशास्त्र की विषय–वस्तु सामूहिक प्रकृति का सामाजिक गुण है अतः इसकी व्याख्या का स्वरूप भी सामाजिक होना चाहिये। दर्खाइम में व्यक्ति और समाज के बीच एक स्पष्ट रेखा खींची है। (समाज एक अलग यथार्थ है व इसको निर्मित करने वाले व्यक्तियों से विभिन्नता रखता है तथा इसकी अपनी अलग विशेषताएं होती है।) साथ ही उसने समाजशास्त्र व मनोविज्ञान के बीच स्पष्ट भेद किया है। सामाजिक तथ्यों की व्याख्या सीधे व्यक्तिगत विशेषताओं के रूप में अथवा मनोविज्ञान के शब्दों में करने का कोई भी प्रयास व्याख्या को गलत कर देगा। इसलिए कारणात्मक व्याख्या के प्रकरण में ''सामाजिक तथ्य की व्याख्या करने वाले कारण की खोज इससे पूर्व घटित सामाजिक तथ्यों में करनी चाहिये न कि व्यक्तिगत चेतना की स्थितियों में''। प्रकार्यात्मक व्याख्या के प्रकरण में ''सामाजिक तथ्य का प्रकार्य सदैव किसी सामाजिक उद्देश्य के संमंध में खोजा जाना चाहिये'' (दर्खाइम 1950:110)।

दर्खाइम ने व्याख्या संबंधी तर्क के अंत में सामाजिक विज्ञान की तुलात्मक प्रवृति पर बल दिया है। यह दिखाने के लिए कि एक तथ्य दूसरे तथ्य का कारण है ''हमें उन प्रकरणों की तुलना करनी होगी जिनमें वे सामान रूप से उपस्थित या अनुपस्थित रहते हैं। ऐसा यह देखने के लिए करना होगा कि परस्थितियों के विभिन्न संयोजनों में उनके द्वारा प्रदर्शित भिन्नता यह संकेत करती है कि एक तथ्य दूसरे पर निर्भर करता है'' (दर्खाइम 1950:125)।

समाजशास्त्री सामान्य रूप से प्रयोगशाला में नियंत्रित प्रयोग नहीं करते अपितु वे रिपोर्ट किये जा चुके तथ्यो का अध्ययन करते हैं या अध्ययन क्षेत्र में जाकर इन सामाजिक तथ्य का अवलोकन करते हैं जो समाज में स्वतः उत्पन्न हो चुके होते हैं। अतः वे अप्रत्यक्ष प्रयोग अथवा तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते हैं।

दर्खाइम ने फ्रेंच भाषा में ऑगस्ट कॉम्ट तथा अग्रेजी भाषा में जे.एस. मिल्स की पुस्तक, सिस्टम ऑफ लॉजिक का अनुसरण करते समय तुलनात्मक पद्धति की कार्य–प्रणाली के रूप में ''सहगामी भिन्नताओं की पद्धति (method of concomitant variations) का उदाहरण प्रशंसा पूर्वक देते हुए इसे 'समाजशास्त्रीय शोध का श्रेष्ठ उपकरण' बताया है।

इस पद्धति के विश्वसनीय होने के लिए उन सभी परिवृत्यों को दृढ़ता से अलग करना आवश्यक नहीं जिन्हें हमने अपने द्वारा तुलना किया जा रहे परिवृत्यों से भिन्न माना है। पर्याप्त संख्या व भिन्न प्रकरणों में पायी जाने वाली किन्ही दो घटनाओं का केवल सामांतर स्थितियों में पाया जाना इस बात का सबूत है कि उनके मध्य एक संभावित संबधं विद्यमान है। इनकी वैधता इस तथ्य के कारण है कि सहगामी भिन्नतएं कारणात्मक संबधं को संयोगवश नहीं अपितु स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित करती है कि सहगामी भिन्नताएं कारणात्मक संबंधों को संयोगवश नहीं अपितु स्वभाविक रूप से प्रदर्शित करती हैं। यह उन्हें इस प्रकार दिखाता है जैसे वे एक निरंतर शैली में एक दूसरे को प्रभावित कर रही है, कम से कम जहां तक उनके गुण संबधं है। दर्खाइम के अनुसार स्थित से सहगामिता स्वयं में एक नियम है चाहे तुलना से पृथक की गई दशा कुछ भी रही हो। जब दो घटनाएं सीधे ही एक दूसरे के साथ परिवर्तित होती है तो इस संबंध को प्रकरणों में उस समय भी स्वीकार करना चाहिये जब उन घटनाओं में से एक दूसरी घटना के बिना भी उपस्थित हो। ऐसा या तो इस कारण से हो सकता है कि कुछ विपरीत कारणों की क्रिया द्वारा इस घटना के कारण को अपना प्रभाव उत्पन्न करने से रोक दिया गया है या इस लिए कि यह उपस्थित तो है परन्तु यह दिखाई देने वाले स्वरूप से भिन्न अवस्था में है। उदाहरण के लिए जब पौधे को सूर्य की रोशनी सीधे मिलती है तब वह सीधा उगता है। परन्तु जब किसी पौधे को बन्द कमरे में रख कर एक आढ़ी दिशा से रोशनी दी जाये तो यह उसी रोशनी की दिशा में झुक जाता है। अतः यह दर्शाता है कि पौधे के बढ़ने का सूर्य की रोशनी से सीधा संबंध है। जब एक परिवृत्य बदलता है तो दुसरा उसके अनुरूप बदल जाता है। यद्यपि हमें इसकी पुनः परीक्षण करने की आवश्यकता है लेकिन हमें विधिवत् किये गये अध्ययनों के परिणामों को जल्दबाजी में नहीं छोड़ देना चाहिये।

सहगामी भिन्नता को कई स्तरों पर देखा जा सकता हैः एक समाज में, समान प्रजाति अथवा सामान प्ररूप के समाजों में, या कई भिन्न प्रकार के सामाजिक प्रजातियों के समाजों में। यद्यपि किसी दी हुई सामाजिक प्रजाति से संबंधित सामाजिक संस्था की संपूर्ण व्याख्या के लिए न केवल इन समाजों में विभिन्न स्वरूप कि अपितु इनकी पूर्वगत प्रजातियों में भी इनके विभिन्न स्वरूप की तुलना करनी होगी। अतः परिवार, विवाह, सम्पत्ति आदि की वर्तमान अवस्था की व्याख्या करने के लिए उनकी उत्पत्ति के बारे में व उनके तत्वों के बारे में जानना आवश्यक होगा। जिन्से यह संस्थाएं बनी हैं। इसके लिए हमें संस्था को प्रांरभिक प्रकार के समाजों में परिवारिक संगठन, विवाह या सम्पत्ति के सबसे अधिक मूल स्वरूप से लेकर विभिन्न सामाजिक प्रजातियों में उसके क्रमिक विकास का अध्ययन करना होगा। ''किसी भी जटिल सामाजिक तथ्य की व्याख्या उस समय तक नहीं की जा सकती जब तक कि सभी प्रजातियों में हो चुके इसके सम्पूर्ण विकास को न देखा जाए'' (दर्खाइम 1950:139)। ऐसे अध्ययन से हमें यह पता चलेगा कि किसी भी व्यवस्था के मूल तत्व क्या है तथा वे कैसे विकसित हुए है। इसके साथ यह भी निश्चित किया जा सकता है कि उन व्यवस्थाओं का स्वरूप किन–किन परिस्थितियों पर निर्भर होता है।

दर्खाइम के लिए तुलनात्मक पद्धति समाज के विज्ञान का वास्तविक ढांचा है। दर्खाइम (1950: 139) के अनुसार ''तुलानत्मक समाजशास्त्र को एक शाखा के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए, यह स्वयं समाजशास्त्र है, जब तक कि यह स्वंय को विशुद्ध रूप से वर्णनकारी होने सके बचाये रखता है तथा तथ्यों का विवरण देने का आकांक्षी है''।

बोध प्रश्न 2

1. सामाजिक तथ्यों का वस्तुपरकता से अवलोकन करने के क्या नियम है? आठ पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. सामाजिक तथ्यों की व्याख्या करने के दो पक्ष क्या है? अपना उत्तर आठ पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.5 सारांश

दर्खाइम की समाजशास्त्र की अवधारणा की चर्चा को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए यह कहा जा सकता है कि दर्खाइम ने समाजशास्त्र को स्पष्ट रूप से एक वैज्ञानिक विषय के रूप में माना है, जिसकी विषय–वस्तु अलग है। उन्होंने विशेषकर मनोविज्ञान, से इसे पृथक किया है। उन्होंने सामाजिक तथ्यों की पहचान करने, अवलोकन व व्याख्या करने के नियम स्थापित किये। उनके लिए व्याख्या का अर्थ प्रकार्यों व कारणों का अध्ययन करना था तथा उन्होंने इन कारणों को तुलनात्मक पद्धति द्वारा प्राप्त किया है।

उन्होंने विभिन्न प्रकार की एकरूपताओं में श्रम–विभाजन के अध्ययन, विभिन्न प्रकार के समाजों में आत्महत्या की दर के अध्ययन, एक सामाजिक प्ररूप में धर्म के अध्ययन द्वारा इस प्रकार के अध्ययनों की प्रकृति दिखाने का प्रयास किया। समाजशास्त्र को एक

विषय के रूप में वैध आधार प्रदान करने के प्रयासों के रूप में उसके जीवन व कार्यों को देखा जाता है। यद्यपि प्राकृतिक विज्ञानों, विशेषकार जीवविज्ञान, में ऐसा अध्ययन वैध अनुभव सिद्ध पद्धति से किया जाता है जिसमें अवलोकन, वर्गीकरण तथा व्याख्या द्वारा ''नियमों'' की प्राप्ति की जाती है, समाजशास्त्र में यह कार्य तुलनात्मक पद्धति से किया जाता है।

5.6 संदर्भ

आरों, रेमों (1967). *मेन करेंट्स इन सोशियोलॅाजिकल थॉट*, वॉल्यूम2, लंदन : पेगुइन बुक्स

दर्खाइम, एमिल (1950), *द रूल्स् ऑफ सोशियोलॅाजिकल मेथड्* (ट्रांसलेटिड बाय् एस. ए. सोलोव एण्ड जे. एच. मुलर एण्ड एडिटिड बाय् इ. जी. कैटलिन, न्यूयार्क : द फ्री प्रेस ऑफ ग्लेनका

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005). *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO 13), नई दिल्ली : इग्नू

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) नहीं, साहचर्य

ii) सूई जेनॅरिस्

iii) सामाजिक तथ्य

iv) वस्तुओं

v) स्वतंत्र

vi) बाह्य, दबाव

vii) व्याधिकीय

बोध प्रश्न 2

1. दर्खाइम ने सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की भांति वस्तुपरक रूप से अध्ययन करने के तीन नियम बनायें:

   (क) सभी पूर्व–धारणाओं का उन्मूलन किया जाना चाहिये।

   (ख) प्रत्येक समाजशास्त्रीय अध्ययन की विषय–वस्तु में ऐसी घटनाओं के समूह को सम्मिलित करना चाहिये जिन्हें प्रारंभ में ही कुछ निश्चित बाह्य विशेषताओं द्वारा परिभाषित किया जा चुका हो तथा इस प्रकार परिभाषित सभी घटनाओं को इस समूह में शामिल करना चाहिये।

   (ग) जब समाजशास्त्री किसी प्रकार के सामाजिक तथ्यों की खोज का उत्तरदायित्व लेता है तो उसे उन्हें अपनी व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वंतत्र होकर देखना चाहिये।

(ii) सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए दो उपागमों अर्थात् कार्यात्मक तथा प्रकार्यात्मक का प्रयोग किया गया है। कारणात्मक उपागम का संबंध यह व्याख्या करने से है कि सामाजिक तथ्य ''क्यों'' विद्यमान रहते हैं। प्रकार्यात्मक उपागम सामाजिक तथ्य की यह प्रदर्शित करते हुए व्याख्या करता है कि यह समाज (सामाजिक सावयव) की किस आवश्यकता की पूर्ति करता है। तार्किक रूप से प्रकार्यात्मक व्याख्या से पहले कारणात्मक व्याख्या करनी चाहिये, क्योंकि कुछ विशेष परिस्थितियों में कारण की जानकारी हमें उसके सम्भावित प्रकार्यो के बारे में कुछ पूर्वाभास दे देती है। यद्यपि दोनों अलग–अलग है परन्तु दोनों के मध्य एक अनूपूरक संबंध है। उदाहरण के लिए, दण्ड (जो सामाजिक प्रतिक्रिया है) का अस्तित्व उन सामूहिक भावनाओं की प्रखरता के कारण होता है जिन्हें अपराध आघात पहुंचाता है। दण्ड का प्रकार्य इन भावनाओं को उसी प्रखर स्तर तक बनायें रखना है। यदि इनके विरूद्ध किये गये अपराध को दण्डित नहीं किया गया तो सामाजिक स्थिरता के लिए आवश्यक भावनाओं की दष्ढ़ता को पूर्ववत् नहीं रखा जा सकेगा।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 एकात्मकता के प्रकार*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 यांत्रिक एकात्मकता

6.2.1 सामूहिक चेतना की संकल्पना

6.2.2 सामूहिक चेतना : प्ररूप के आधार पर

6.2.3 सामूहिक चेतना : तत्वों के आधार पर

6.3 सावयवी एकात्मकता

6.3.1 सावयवी एकात्मकता में सामूहिक चेतना के नए रूप

6.3.2 प्ररूप के आधार पर

6.3.3 विषय–वस्तु के आधार पर

6.4 सारांश

6.5 संदर्भ

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप के द्वारा सम्भव होगा

- यान्त्रिक एकात्मकता व इसके विशेष प्रकार का सामाजिक संरचना (आदिम समाज जैसी) से संबंध
- खण्डात्मक सामाजिक संरचना (आदिम समाज) में दण्डात्मक कानून द्वारा एकात्मकता मजबूत करने में योगदान
- आदिम समाजों में सामूहिक चेतना का महत्व
- जटिल सामाजिक संरचना में सावयवी एकात्मकता श्रम के विभाजन पर आधारित
- जटिल सामाजिक संरचना में एकात्मकता के सन्दर्भ में क्षति–पूरक कानून की भूमिका इनमें सामूहिक चेतना का परिवर्तित रुप आदि की व्याख्या तथा विवेचना करना।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में दर्खाइम द्वारा द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी में प्रस्तुत सामाजिक और यांत्रिक एकात्मकता पर चर्चा की गई है। दर्खाइम यह जानने को उत्सुक थे कि सामाजिक जीवन किस प्रकार नियंत्रित होता है। अपने विचारों को दृढ़ता देने के लिए उन्होंने खंड और जटिल समाज के बीच द्वंद्ववाद की स्थापना की। इन समाजों की क्या विशेषताएं हैं? इनमें एकात्मकता के क्या प्रकार हैं? इन प्रश्नों की व्याख्या करते हुए

*इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 13 का नीता माथुर द्वारा संशोधन।

उन्होंने एकात्मकता के दो प्रकार प्रतिपादित किए: यांत्रिक एकात्मकता और सावयवी एकात्मकता। उनके विचार में ये एकात्मकता नियमों के प्रकार से पहचानी जा सकती हैं।

सामाजिक एकात्मकता के विचार को संक्षेप में दिया गया है तथा एकात्मकता के पहले प्रकार का यांत्रिक एकात्मकता के सन्दर्भ में किया गया है। दण्ड समाज द्वारा उस व्यक्ति को दिया जाता है जिसने सामाजिक मान्यताओं की अवहेलना की है। दण्ड देने से समाज की प्रभुता व एकात्मकता पुनः निर्धारित होती है। इस भाग के उपभागों में सामाजिक संरचना में सामूहिक चेतना के महत्व व परिभाषा को तथा इसकी प्रकषति को समझा गया है। सावयवी एकात्मकता पर चर्चा की गई है। इस भाग में जटिल समाजों की संरचना के सदंर्भ में कानून के क्षति–पूर्ति वाले पक्ष को प्रस्तुत किया गया है तथा सामाजिक संरचना में श्रम विभाजन सदस्यों को पारस्परिक निर्भर बनाता है व समाज में एकात्मकता बनाए रखता है, इसकी चर्चा की गई है। इस भाग के उपभागों में सामूहिक चेतना के प्ररुप व गुणों (content) में किस प्रकार बदलती हुई परिस्थितियों से परिवर्तन आ गया है उसको भी दर्शाया गया है। इकाई के अन्त में सारांश प्रस्तुत किया गया है।

6.2 यांत्रिक एकात्मकता

यांत्रिक एकात्मकता की प्रकषति को दर्खाइम ने सूइ जेनरिस (sui generis) माना है अर्थात् जिसका जन्म स्वतः सहजता से हुआ हो। यह व्यक्ति को समाज से प्रत्यक्ष रुप से जोड़ती है। इस एकात्मकता का उदय समूह के सदस्यों के समान जीवन क्रम व एक से ही अनुभवों से होता है।

एक यंत्र या मशीन से बनी वस्तुएं सभी समान आकार व गुण की होती हैं, इसी प्रकार आदिम समाज में ऐसा लगता है कि हर व्यक्ति (लिंग व आयु समान होते हुए) दूसरे व्यक्ति जैसा ही है। उनमें ऐसी समरुपता है कि वह यंत्रवत् हों या एक ही मशीन की उत्पति हों। ऐसी समरुपता के आधार पर जो समाज में एकात्मकता बनती है, उसे यांत्रिक एकात्मकता कहा गया है।

दर्खाइम ने इस बात का समर्थन किया है कि एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक संरचना समरुपता प्रदान करती है। इनके लक्षणों का वर्णन एक समरुपी खण्डों की व्यवस्था की तरह किया जा सकता है जिसमें प्रत्येक खण्ड एक दूसरे के समान है। समरुपी तत्व खण्डों में स्वयंमेव निहित होते हैं, अतः समाज अत्यंत ही छोटे–छोटे भागों में विभक्त हो जाता है जो व्यक्ति को पूर्णतः अपने में समेट लेता है। मूल रुप से, खण्डात्मक समाज कुल (clans) पर आधारित थे तथा ये लक्षण अविकसित समाजों में व्यापक रुप से पाये जाते थे। किन्तु विकास की प्रक्रिया में खण्डात्मक लक्षण समाज में अधिक समय तक लोकप्रिय नहीं रह सके। इनका विस्तार क्षेत्रीय आधारों पर होने लगा और जनसंख्या का बहु भाग धीरे–धीरे रक्त संबंधों (वास्तविक अथवा कल्पित) द्वारा विभाजित न होकर क्षेत्रीय होने लगा। खण्डात्मक सामाजिक संरचना में अन्तर–आश्रिता कम से कम पाई जाती है। इस संरचना के एक खंड में जो घटित होता है उससे अन्य खंडों पर नाममात्र का प्रभाव भी नहीं पड़ता। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि खण्डात्मक सामाजिक संरचनाओं में सापेक्षित रुप से पारस्परिक सम्बन्धों का भैतिक व नैतिक घनत्व कम होता है। इसका अर्थ है कि केवल कम संख्या वाले लोगों में (कम विस्तार) आपसी अतः क्रिया

होती है तथा लोग कम बार (घनत्व) अंतःक्रिया करते हैं। इसका कारण यह है कि जो काम एक व्यक्ति कर सकता है, वह काम अन्य भी कर सकते हैं अतः लोगों को एक दूसरे पर निर्भर नहीं होना पड़ता है।

यदि किसी व्यक्ति को लकड़ी काटनी हैं, पक्षी पकड़ना है या जंगल में पेड़ से फल तोड़ना है, तो वह यह काम किसी अन्य व्यक्ति के समान कर सकता है। अतः लोग एक जैसे काम कर लेते हैं। ऐसे कामों मे अन्तर्निभरता सीमित होती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रथा के कौन से ढंग यांत्रिक एकात्मकता की परिस्थितियों को व्यावहारिक रुप से नियंत्रित करते हैं? इस प्रश्न की व्याख्या दर्खाइम ने सामूहिक चेतना से की है। उनकी धारणा यह है कि चेतना की समरुपता ऐसे नियमों को जन्म देती हैं जो समान विश्वासों व रीतियों पर आधारित हैं। सामाजिक जीवन में धार्मिक तथा आर्थिक संस्थाएं एक दूसरे से घुली–मिली होती हैं और इस तरह के समाज में विभेदीकरण कम होते हैं व एक तरह का आदिम साम्यवाद पाया जाता है।

सम्पति पर समानाधिकार होता है, एक से अनुभव होते हैं और नियम, कायदे–कानून सामान्य जीवन से जुड़े होते हैं। रीतिरिवाजों तथा कानूनों से समूह की रक्षा होती है तथा उन्हीं से समूह की सम्पति व भावनाओं का संरक्षण किया जाता है। इस तरह कानून की प्रकषति सामूहिक होती है और सामूहिक रुप से ही गलत काम करने वाले को दण्ड मिलता है। दंड व्यवस्था से निकली कानूनी अनुज्ञाएं (sanctions) सामाजिक सम्बन्धों की संख्या के अनुरुप होती है। सामूहिक चेतना इन अनुज्ञाओं का नियमन तथा नियंत्रण करती है। इस प्रकार दंड व्यवस्था तथा अनुज्ञाओं के सापेक्षिक महत्व को समझा जा सकता है। समूह के प्रति किये गये गलत काम को दंड दिया जाता है। जहाँ एक ओर व्यक्ति विशेष को दंड मिलता है, दूसरी ओर दंड से समाज के विश्वास तथा मूल्य मजबूत होते हैं। हर अपराध समूह की भावनाओं को ठेस पहुँचाता है और हर दंड समूह की सत्ता को पुनः स्थापित करता है।

प्रश्न है कि यदि व्यक्तियों का समूह एक दूसरे पर कम निर्भर है व और स्वयं में सक्षम है, और ऐसे समाज में यदि संचार की सघनता भी कम है, तो ऐसे समूह में सामूहिक चेतना का विकास कैसे हो सकता है ? ऐसे समाज के सारे समूहों में सामाजिक नियंत्रण तथा अनुज्ञाएं कैसे संभव है ?

6.2.1 सामूहिक चेतना की संकल्पना

सांस्कृतिक अथवा आदर्शात्मक स्तर पर सामूहिक चेतना के तहत् यांत्रिक एकात्मकता कैसे हो होती है? दर्खाइम ने सामूहिक चेतना को निम्न प्रकार से परिभाषित किया हैः सामूहिक चेतना विश्वासों तथा भावनाओं की वह श्रेणी है जो किसी भी समाज में औसतन प्रकट हो तथा निश्चित प्रकार की व्यवस्था बनाती हो एवम् इसकी अपनी निश्चित प्रकार की जीवनशैली हो। कोई भी सदस्य इनके प्ररुप तथा गुण से सम्बन्धित लक्षणों के आधार पर इनकी पहचान कर सकता है।

6.2.2 सामूहिक चेतनाः प्ररुप के आधार पर

समूहिक चेतनाः के प्ररूप के सन्दर्भ में दर्खाइम का कहना है कि सामाजिक बंधनों की शक्ति यांत्रिक एकात्मकता का लक्षण है तथा यांत्रिक एकात्मकता के तीन रुप में सामने आते हैं।

i) सामूहिक चेतना तथा व्यक्तिगत चेतना के आयतन के बीच का सम्बन्ध

ii) सामूहिक चेतना की दशाओं की औसत तीव्रता

iii) उन सभी दशाओं की अधिक व कम दष्ढ़ता।

दूसरे शब्दों में, जितने ही दृढ़ विश्वास व अनुज्ञाएं समाज में विद्यमान होते हैं उतनी ही कम व्यक्ति की स्वतंत्रता की संभावनाएं होती हैं। अतः जहाँ यांत्रिक एकात्मकता प्रभावशाली होती है वहाँ सामूहिक चेतना विस्तृत व मजबूत होती है। यह मनुष्यों की गतिविधियों में व्यापक रुप से तारतम्यता लाती है। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्तिगत चेतना कठिनाई से सामूहिक चेतना से अलग करने योग्य होती है। यहाँ सामूहिक सत्ता ही पूर्णता की घोतक है, चाहे यह पूरे समुदाय में विलीन हो अथवा समुदाय के मुखिया में यह सत्ता समाहित हो।

6.2.3 सामूहिक चेतनाः तत्वों के आधार पर

सामूहिक चेतना के गुण के सन्दर्भ में विभेद करने वाले अनेक तत्व होते हैं। मुख्य रुप से इनकी प्रकषति धार्मिक होती है तथा धर्म का फैलाव मुख्यतः पूरे समाज में होता है। यह इसलिए होता है क्योंकि सामाजिक जीवन मुख्यतः उभयनिष्ट विश्वासों व अनुज्ञाओं द्वारा नियंत्रित होता है जो सर्वसम्मति से स्वीकार किये जाते हैं।

वास्तविकता यह है कि पुराने समय के अविकसित समाजों में हर वस्तु में धर्म का फैलाव हो गया था। सामाजिक वही था जो धार्मिक था, दोनों शब्द आदिम समाजों में पर्यायवाची थे। अपनी बनावट में सामूहिक व सामाजिक लीन कर चेतना मनुष्यों को उसकी इच्छाओं से भी उच्च जगत में पहुँचती थी। साकार रुप में सामूहिक चेतना की दशाएं क्षेत्रीय परिस्थितियों से जुड़कर भी प्रजातीय व वातावरण की विशिष्टता के कारण व्यक्ति को उसके उद्देश्यों जैसे जानवर, पेड़, पौधे व अनेकों प्राकृतिक शक्तियों से जोड़ती थीं, बस तभी से लोग इन प्रघटनाओं द्वारा जुड़े हुए हैं। ये प्रघटनाएं सभी चेतनाओं को समान रुप से प्रभावित करती हैं। सभी व्यक्तियों की चेतना के परिणामस्वरुप समूह–चेतना बनी और ये ही उसके प्ररुप व उद्देश्यों को निश्चित करती हैं। अब यह कहा जा सकता है कि सामूहिक चेतना भिन्न आदिम समाजों में अपना विषिश्ट लक्षण ग्रहण करती है? इस प्रकार निर्मित चेतना के निश्चित लक्षण होते हैं।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित में से जो सही हो उस पर (✓) का निशान लगाइये

i) मूल रुप से खण्डात्मक समाज आधारित होते थे।

(अ) जाति पर

(ब) वर्ण पर

(स) प्रजाति पर

(द) कुल पर

ii) निम्नलिखित में से जो सही हो उस पर (✓) का निशान लगाइये।

दण्डात्मक कानूनों के उद्देश्य

(अ) व्यक्तियों को अधिक स्वतंत्रता देना था।

(ब) समाज को विभाजित करने का था।

(स) अविकसित समाजों में सामूहिक इच्छा अथवा सामूहिक चेतना के विरुद्ध कार्यों को रोक कर एकात्मकता प्रदान करना था।

(द) समाज में श्रम विभाजन करने का था।

iii) सामूहिक चेतना से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.3 सावयवी एकात्मकता

दर्खाइम के अनुसार समाज में सावयवी एकात्मकता की अनिवार्य विशेषता श्रम विभाजन का होना है तथा इसने धीरे–धीरे सामाजिक समरूपता को कम कर दिया। व्यक्ति अब समाज के उन अवयवों पर आश्रित रहने लगा जिससे समाज की रचना हुई। समाज इस अर्थ में विभिन्न एवम् विशेष कार्यों की एक व्यवस्था है जो निश्चत परस्पर सम्बन्धों द्वारा जुड़ी है। इस मान्यता के अनुसार व्यक्तियों की विभिन्नता इस सीमा तक सम्भव है कि प्रत्येक व्यक्ति की क्रिया का एक क्षेत्र होता है और व्यक्ति उस क्षेत्र तक सीमित रहता है, इस सब का फल व्यक्ति का स्वयं का व्यक्तित्व है। इस प्रकार यहाँ व्यक्ति विशेष की चेतना सामूहिक चेतना से अवश्य ही स्वतंत्र होती है।

6.3.1 सावयवी एकात्मकता में सामूहिक चेतना के नए रुप

जिन समाजों में सावयवी एकात्मकता अधिक प्रभावशाली होती है उन समाजों की सामाजिक संरचना खण्डात्मक स्वरुपों के विपरीत गुण लिए होती है। इस प्रकार की सामाजिक संरचना में दूसरे विभिन्न अवयवों की विशिष्ट भूमिकाएँ होती हैं जो स्वयं भी विभिन्न भागों से बने होते हैं, तथा इन भागों में परस्पर आश्रितता तथा तारतम्यता एक केन्द्रीय अंग द्वारा नियंत्रित होती है तथ इस विशिष्ट अंग का प्रभाव अन्य सभी अंगों पर होता है। इस प्रकार के गुण के कारण खण्डों का विलयन पूर्णतः हो जाता है तथा व्यक्ति के सम्बन्ध अन्य क्षेत्रों से होने लगते हैं। सम्बन्धों की इन प्रक्रियाओं के आगे बढ़ने से सम्बन्धों का क्षेत्र भी बढ़ता है। अतः व्यक्ति का जीवन केन्द्र वहीं तक सीमित नहीं रहता जहाँ वह रहता है। खण्डों के इस विलयन की प्रक्रिया में बाजारों का विलयन भी सम्मिलित होता है जिससे एक बाजार (नगर) की धारणा अस्तित्व में आती है तथा यह

सम्पूर्ण समाज को अपने में समा लेती है। समाज स्वयं ही एक बड़े बाजार में विलीन हो जाता है तथा यह बाजार सम्पूर्ण जनसंख्या को अपनी चार दीवारी के अन्दर कर लेता है। यहाँ व्यक्ति अधिक समय तक अपनी वंश–पंरम्परा के आधार पर जुड़े नहीं रहते अपितु इनकी समूहता विशिष्ट प्रकार की सामाजिक क्रियाओं पर होती है। व्यक्ति इन क्रियाओं व समूहों के प्रति निष्ठावान होते हैं। इस प्रकार की क्रियाओं व सम्बन्धों की प्रकर्षतियाँ अधिक समय तक व्यक्ति को उसकी जन्मभूमि तक ही सीमित नहीं रखती बल्कि इनका फैलाव उनके कार्य करने के स्थान तक भी हो जाता है।

संगठित सामाजिक संरचना का गुण इसकी अन्तर–निर्भरता की अधिक मात्रा है। उद्योगों की बढ़ती हुई संख्या व श्रम विभाजन में प्रगति सामाजिक समूहों की एकात्मकता को निश्चित करती है। जैसे ही एक स्थान पर परिवर्तन होता है वह धीरे–धीरे दूसरे सिरों पर पहुँचा दिया जाता है। यहाँ पर राज्यों के हस्तक्षेप तथा वैधानिक चलनों की आवश्यकता होती है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि संगठित सामाजिक संरचना में सापेक्षित रुप से उच्च आयतन तथा भौतिक तथा नैतिक घनत्व भी उच्च होता है। सामान्यतः अधिक विकास की मात्रा के कारण समाज का आयतन अधिक हो जाता है। परिणामतः श्रम विभाजन भी बढ़ जाता है तथा मनुष्यों की प्रगतिशीलता के क्रम में जनसंख्या अधिक सघन होने लगती है। जैसे ही सामाजिक प्रथाएँ सावयवी एकात्मकता के अनुरुप होती हैं, श्रम विभाजन के वैधानिक नियम भी निर्धारित होने लगते हैं। ये नियम विभाजित कार्यों की प्रकृति व उनके सम्बन्धों को निश्चित करते हैं। इन कार्यों व संबंधों की अवहेलना का निपटारा क्षति–पूरक उपायों से होता है। ऐसे कानून अथवा सहयोगात्मक कानून, सामाजिक मान्यताओं के साथ सावयवी एकात्मकता की आपात स्थिति में एक संकेत की भांति कार्य करते हैं। इसका निर्माण सिविल कानून, वाणिज्य कानून, संविदा कानून, प्रशानिक कानून तथा संवैधानिक कानूनों द्वारा होता है। इस प्रकार के कानूनों की उत्पति पैनल दंडात्मक कानूनों से हुई है। जो साधारण समाजों में मिलते थे। यहाँ पैनल कानून व यांत्रिक एकात्मकता में जैसा परस्पर संबंध देखा गया था कुछ उस प्रकार ही सहयोगात्मक कानूनों की सीमा व सामाजिक जीवन बंधन, जो विभाजित श्रम से उत्पन्न हुए, उनमें भी है। कोई भी, तार्किकता द्वारा उन सभी परस्पर निर्भरता के संबंधों को जो समान कार्यों द्वारा लोगों को जोड़कर प्रथाओं द्वारा नियंत्रित होते हैं, मानने से इन्कार कर सकता है। इन सभी वैधानिक एवम् प्रथात्मक नियमों की आवश्यकता सावयवी एकात्मकता हेतु होती है। इस प्रकार की एकात्मकता के बने रहने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न अवयव एक निश्चित प्रकार से सहयोग करें। (यदि ये हर प्रकार से सहयोग नहीं करते तो कम से कम पूर्व निर्धारित परिस्थितियों के अनुसार अवश्य ही करते हैं।) अतः मात्र अनुबन्ध ही पूर्णता का द्योतक नहीं है बल्कि इसके सुचारु रुप से पालन हेतु नियमों की जरूरत होती है, ये नियम भी उतने ही जटिल होते हैं जितना कि स्वयं जीवन।

6.3.2 प्ररूप के आधार पर

प्रश्न यह उठता है कि सावयवी एकात्मकता की परिस्थितियों में सामूहिक चेतना का रुप क्या होता है? सामूहिक चेतना के आयतन, तीव्रता एवं निश्चितता का ध्यान में रखते हुए दर्खाइम ने इसके प्ररुप के बारे में तर्क दिया है कि इसका आयतन स्थिर व छोटा होता है जबकि तीव्रता और निश्चितता अवश्य ही क्षीण होने लगती है सामूहिक चेतना विकसित समाजों का मात्र सीमित भाग है। औसतन रुप से सामूहिक चेतना की तीव्रता

और निश्चितता की मात्रा विलुप्त होने लगती है, इस प्रकार जब श्रम विभाजन विकसित होने लगता है तो सामूहिक चेतना दुर्बल तथा अस्पष्ट होने लगती है। इसकी प्रवृति कमजोर होने से व्यक्ति को समूह को समूह की दिशा में ले जाते हुए क्षीण प्रतीत होती है तथा आचरण के नियम अनिश्चित हो जाते हैं, इसलिए व्यक्ति को अपने बारे में चिन्तन–मनन के अधिक अवसर मिलते हैं तथा स्वतंत्रता के भी अधिक अवसर होते हैं।

6.3.3 विषय–वस्तु के आधार पर

समूहिक चेतना के लक्षण सावयवी एकात्मकता के अन्तर्गत धीरे–धीरे धर्म–निरपेक्ष, मानवतावादी एवं तार्किक होने लगते हैं। ये सामूहिक उत्सुकता के मूल्यों को समाज से समाप्त अथवा क्षीण करने लगते हैं। वैज्ञानिक विचारों के कारण धर्म का संसार तीव्रता से सिकुड़ने लगा तथा कभी न कम होने वाला सामूहिक विश्वास व भावना जो धर्म के कारण दष्ढ़ थी उनका ह्रास सम्भव हुआ। समाजिक संगठन के अद्‌भुत गुण जो मनुष्य की रुचि से भी उत्कृष्ट थे बहुत तेजी से घटते जा रहे हैं।

दर्खाइम ने समूह चेतना के लक्षण विश्वास–व्यवस्था के रुप में देखे थे। आधुनिक समाजों में इसके उच्च मूल्य व्यक्ति को प्रतिष्ठा ही नहीं अपितु अवसर की समानता भी प्रदान करते हैं। इन तथ्यों की व्याख्या दर्खाइम ने एक अन्य कषति, *प्रोफेशनल एथिक्स एंड सिविक मॉरल्स (Professional Ethics and Civic Morals)* में की है।

बोध प्रश्न 2

i) निम्नलिखित कथनों में जो सही हों उन पर (✓) का निशान लगाइये।

यांत्रिक एकात्मकता उन समाजों में मिलती है जिसमें

(अ) समूह समरूपता पर आधाारित होते हैं तथा दण्डात्मक कानून का प्रचलन होता है।

(ब) समूह विभिन्नता पर आधारित होते हैं तथा दण्डात्मक कानून का प्रचलन होता है।

(स) समूह समानता पर आधारित होते हैं तथा क्षति–पूरक कानून का प्रचलन होता है।

(द) समूह असमानता पर आधारित होते हैं तथा क्षति–पूरक कानून का प्रचलन होता है।

ii) जो निम्नलिखित में सही हों उस पर (✓) का निशान लगाइये।

दखाईम ने यांत्रिक तथा सावयवी एकात्मकता का विवेचन किस पुस्तक में किया है?

(अ) द सुइसाईड

(ब) द एलिमैंट्री फार्म्स ऑफ रिलिजस लाइफ

(स) द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी

(द) द रुल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मैथड

iii) निम्न में से जो सही है उसे खाली स्थान में भरकर कथन को पूरा कीजिए।

सावयवी एकात्मकता जिन समाजों में मिलती है उनकी सामाजिक संरचना .... इस प्रकार की होती है।

(अ) सरल

(ब) जटिल

(स) मिश्रित

(द) काल्पनिक

iv) सावयवी एकात्मकता के स्वरुप की पाँच पंक्तियों में चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.4 सारांश

इकाई का सार नीचे तालिका के रुप में स्पष्ट किया जा रहा है। आशा है कि तालिका के माध्यम से यांत्रिक एकात्मकता तथा सावयवी एकात्मकताओं में अंतर याद रखने में आपको मदद मिलेगी। दोनों में अंतर का पहला आधार संरचनात्मक है। दूसरा आधार प्रतिमानों के प्रकार से निर्धारित होता है। तीसरा आधार सामूहिक चेतना के लक्षणों अर्थात् प्ररूपों तथा तथा विषय–वस्तु के अनुसार है।

क्रम	यांत्रिक एकात्मकता	सावयवी एकात्मकता
i) संरचना के आधार पर	समानता पर आधारित होती है। (सर्वाधिक रुप से अविकसित समाजों में मिलती है।) खण्डात्मक प्रकार की होती है, पहले कुल पर आधारित बाद में क्षेत्रीय आधारों पर। परस्पर आश्रिता की मात्रा कम, सामाजिक संबंध सापेक्षित रुप से दुर्बलसापेक्षित रुप से जनसंख्या का कम आयतन। सापेक्षित रुप से भौतिक व नैतिक घनत्व कम।	श्रम विभाजन पर आधारित होती है। (सर्वाधिक रुप से अधिक विकसित समाजों में मिलती है।) जटिल प्रकार की होती है (पहले बाजारों का विलयन और बाद में नगर की उत्पति) परस्पर आश्रिता की मात्रा अधिक, सामाजिक सम्बन्ध सापेक्षित रुप से मजबूत। सापेक्षिक रुप से जनसंख्या का अधिक आयतन। सापेक्षिक रुप से भौतिक तथा नैतिक घनत्व अधिक।

ii) प्रतिमानों के प्रकार पर	दण्डात्मक नियमों की मान्यताएँ पीनल कानून का चलन	क्षति–पूरक नियमों की मान्यताएँ। सहयोगात्मक कानून का चलन सिविल, वाणिज्य, संविद, प्रशासनिक तथा संवैधानिक कानून
iii) सामूहिक चेतना के लक्षण		
(अ) प्ररुप	उच्च आयतन उच्च तीव्रता उच्च निश्चितता पूर्ण रुपेण सामूहिक सत्ता	निम्न आयतन निम्न तीव्रता निम्न निश्चितता व्यक्ति के आत्म प्रयास व विचार के लिए अधिक अवसर।
(ब) विषय–वस्तु	अधिक धार्मिक मानव कल्याण से महान तथा वाद–विवाद से परे समाज से उच्च मूल्यों द्वारा संलग्न प्रत्यक्ष एवं विशिष्ट	धर्मनिरपेक्ष तथा मानवता पर आधारितमानव कल्याण से सम्बन्धित तथा वाद–विवाद हेतु स्वतंत्र व्यक्ति की अस्मिता उच्च मूल्यों से संलग्न, समान अवसर, कार्य आचरण तथा सामाजिक न्याय सैद्धांतिक एवं सामान्य

6.5 संदर्भ

बियेर्स्टेड, राबर्ट, (1966). *एमिल दर्खाइम वेडेनफ्रेल्ड निकाल्सनः* लंदन

दर्खाइम, एमिल. (1893). *द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी.* लंदन : मैकमिलन

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री (2005). *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO 13), नई दिल्ली : इग्नू

ल्यूक्स, स्टीवन. (1973). *एमिल दर्खाइमः हिज लाइफ एंड वर्क. अलेन लेन,* लंदन : द पेंगुइन प्रैस

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) (द)

ii) (स)

iii) सामूहिक चेतना विश्वासों तथा भावनाओं की वह श्रंखला है जो अविकसित समाजों में मूलतः प्रकट होती है तथा निश्चित प्रकार की व्यवस्था के आधार पर जीवन की एक विशिष्ट शैली रखती है। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता को कम करके उन समाजों के स्वरूप को धार्मिक बना देती है।

iv) अविकसित समाजों में, सरल सामाजिक संरचना के नाते समरूपता की विशेषता, जिसमें व्यक्ति की इच्छाएं सामूहिकता में मिल जाती है तथा वह धार्मिक प्रथाओं व नियंत्रण के कारण यंत्रवत कार्य करते हुए समाज को एकीकृत करती है, यांत्रिक एकात्मकता कहलाती है।

बोध प्रश्न 2

i) (अ)

ii) (स)

iii) (ब)

iv) विकसित समाजों में कार्य के अत्यधिक विभाजन सामाजिक संरचना जटिल हो गयी। कार्यों में विभाजन की विभिन्नताओं ने आवश्यकताओं के संदर्भ में व्यक्तियों को एक दूसरे पर आश्रित कर दिया। समाज में विद्यमान इन गुणों द्वारा व्यक्ति के एक दूसरे से अप्रत्यक्ष रुप से जुड़े होने को दर्खाइम ने सावयवी एकात्मकता कहा है।